सत्यमेव जयते

73वां अंक 2025

पर्यावरण

#एक_पेड़_माँ_के_नाम

भारत सरकार

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली

विभिन्न कार्यालयों द्वारा आयोजित एक पेड़ माँ के नाम अभियान

मंत्री
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन
भारत सरकार

सत्यमेव जयते

भूपेन्द्र यादव
BHUPENDER YADAV

MINISTER
ENVIRONMENT, FOREST AND CLIMATE CHANGE
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की 'पर्यावरण' पत्रिका का 73वां अंक प्रकाशित हो रहा है। इस पत्रिका में पर्यावरण से संबंधित महत्वपूर्ण व सारगर्भित सामग्री दी गई है। इसमें हिमालयी क्षेत्रों में पर्यावरण से संबंधित सामग्री का भी समावेश किया गया है। आशा है कि पत्रिका में शामिल की गई रचनाओं से जनमानस को पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, वन और वन्य जीवों के संबंध में ज्ञानवर्धक जानकारी प्राप्त होगी।

आशा करता हूं कि पत्रिका अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल होगी। पत्रिका के प्रकाशन के लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।

(भूपेंद्र यादव)

पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड, नई दिल्ली–110003, फोन : 011-20819190, 011-20819187, फैक्स: 011-20819299
Paryavaran Bhawan, Jor Bagh Road, New Delhi-110003, Tel.: 011-20819190, 011-20819187, Fax : 011-20819299
ईमेल / E-mail : mefcc@gov.in

एक कदम स्वच्छता की ओर

कीर्तवर्धन सिंह
KIRTI VARDHAN SINGH

सत्यमेव जयते

राज्य मंत्री
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन
विदेश मंत्रालय
भारत सरकार
MINISTER OF STATE
ENVIRONMENT, FOREST AND CLIMATE CHANGE
EXTERNAL AFFAIRS
GOVERNMENT OF INDIA

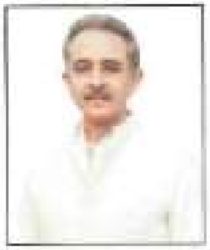

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की हिंदी पत्रिका 'पर्यावरण' का 73वां अंक आप तक पहुंच रहा है। पत्रिका के विषय पर्यावरण संरक्षण, वन्य जीवन की रक्षा और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से संबंधित हैं। हमारे देश में पर्यावरणीय संकटों का समाधान निकालने और संधारणीय विकास की दिशा में कदम बढ़ाने के लिए कई महत्वपूर्ण पहलें की जा रही हैं। यह पत्रिका हमें पर्यावरण की रक्षा करने और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वच्छ, हरा-भरा और समृद्ध वातावरण सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध रहने का आह्वान करती है।

मैं आशा करता हूं कि यह पत्रिका सभी पाठकों के लिए रोचक और ज्ञानवर्धक साबित होगी। मैं इस पत्रिका के प्रकाशन के लिए इसके लेखकों और संपादक मंडल को बधाई देता हूं।

(कीर्तवर्धन सिंह)

कार्यालय: 5वां तल, आकाश विंग, इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड, नई दिल्ली-110003; दूरभाष: 011-20819418, 011-20819421, फैक्स: 011-20819207, ई-मेल : mos.kvs@gov.in
Office : 5th Floor, Aakash Wing, Indira Paryavaran Bhawan, Jor Bagh Road, New Delhi-110003, Tel.: 011-20819418, 011-20819421, Fax : 011-20819207, E-mail : mos.kvs@gov.in
कार्यालय: कमरा नं.141, साउथ ब्लॉक, नई दिल्ली-110001, दूरभाष: 011-23011141, 23014070, 23794337, फैक्स : 011-23011425, ई-मेल : mos.kvs@gov.in
Office : Room No. 141, South Block, New Delhi-110001, Tel.: 011-23011141, 23014070, 23794337, Fax : 011-23011425, E-mail : mos.kvs@gov.in
निवास: 23, बी.आर. मेहता लेन, नई दिल्ली-110001, दूरभाष: 011-23782979
Residence : 23, B.R. Mehta Lane, New Delhi-110001, Tel.: 011-23782979

तन्मय कुमार
TANMAY KUMAR

सत्यमेव जयते

सचिव
भारत सरकार
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय
SECRETARY
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF ENVIRONMENT, FOREST
& CLIMATE CHANGE

संदेश

यह अत्यंत गर्व का विषय है कि पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की हिंदी पत्रिका 'पर्यावरण' का 73वां अंक प्रकाशित किया जा रहा है। इस अंक में भारतीय परिदृश्य में पर्यावरण से संबंधित विभिन्न विषयों पर लेख शामिल किए गए हैं। पर्यावरण पत्रिका का ध्येय पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर नवीनतम जानकारी उपलब्ध कराना है।

पत्रिका के इस अंक में पर्यावरणीय मुद्दों पर गहरी समझ के साथ-साथ हमारी साझा जिम्मेदारी को समझते हुए पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सक्रिय कदम उठाने के लिए प्रेरित किया गया है। वर्तमान में हम जलवायु परिवर्तन, जैवविविधता की हानि, वायु और जल प्रदूषण जैसी विकट समस्याओं का सामना कर रहे हैं। इन समस्याओं का समाधान केवल वैश्विक स्तर पर नहीं, बल्कि राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर भी मिलकर किया जाना चाहिए।

मुझे आशा है कि हम पर्यावरण अनुकूल जीवन-शैली अपनाकर पर्यावरण को बेहतर बनाने में पूर्ण योगदान देंगे। पत्रिका के उद्देश्य की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं।

(तन्मय कुमार)

नई दिल्ली
30 अप्रैल, 2025

इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड, नई दिल्ली-110 003 फोन : (011)-2081-9408, 2081-9006
INDIRA PARYAVARAN BHAWAN, JOR BAGH ROAD, NEW DELHI-110 003, PH. : 011-2081-9408, 2081-9006
E-mail : secy-moef@nic.in, Website : moef.gov.in

सत्यजित मिश्रा
संयुक्त सचिव
SATYAJIT MISHRA
JOINT SECRETARY

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF ENVIRONMENT, FOREST
& CLIMATE CHANGE

संदेश

यह प्रसन्नता का विषय है कि पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की 'पर्यावरण' पत्रिका का 73वां अंक प्रकाशित हो रहा है। पर्यावरण पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य मंत्रालय और इसके क्षेत्रीय व अधीनस्थ कार्यालयों में किए जा रहे कार्यकलापों और नवीन अनुसंधानों की जानकारी आम लोगों तक हिंदी भाषा में पहुंचाना है।

पत्रिका के इस अंक में पर्यावरण और पारिस्थितिकी से संबंधित विभिन्न वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों की जानकारी समाहित है। इस अंक में मंत्रालय और इसके नियन्त्रणाधीन कार्यालयों से प्राप्त रचनाओं को संकलित किया गया है। इन लेखों में जल संरक्षण, मृदा संरक्षण, पर्यावास, पर्यावरण संरक्षण, मधु-मक्खी पालन, पारिस्थितिकी, राष्ट्रीय उद्यान, जैवविविधता, प्रदूषण नियंत्रण, अपशिष्ट प्रबंधन, वन प्रबंधन, जलवायु परिवर्तन, आदि जैसे विषयों पर उपयोगी जानकारी दी गई है।

आशा करता हूं कि पत्रिका का यह अंक वन्य जीवन, पेड़-पौधों और पर्यावरण संरक्षण में रूचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए काफी उपयोगी होगा।

स. मिश्रा
(सत्यजित मिश्रा)

प्रथम तल, अग्नि विंग, इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड, नई दिल्ली-110003
दूरभाष: 011-20819232, फैक्स: 011-20819137, ईमेल : satyajit.mishra@nic.in
1st Floor, Agni-Wing, Indira Paryavaran Bhawan, Jor Bagh Road, New Delhi-110003
Tel.: 011-20819232, Fax : 011-20819137, E-mail : satyajit.mishra@nic.in

संपादक की कलम से

प्रिय पाठक,

मंत्रालय की 'पर्यावरण' पत्रिका का 73वां अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है।

देश में वायु प्रदूषण की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही है। वाहनों, उद्योगों से निकलने वाला धुआं और पराली जलाने से फैलने वाला धुआं प्रकृति में व्याप्त होकर मानव के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है जिससे श्वसन संबंधी रोगों में दिन-प्रतिदिन बढ़ोत्तरी हो रही है। ऐसे में जरूरत है कि प्रकृति को हरा-भरा बनाने के लिए अधिक से अधिक पेड़ लगाए जाएं। इस दिशा में मंत्रालय ने देशव्यापी स्तर पर 'एक पेड़ माँ के नाम' से एक मुहिम का सफलतापूर्वक संचालन किया है। सरकार की इस मुहिम में हम सभी को मिलकर अपने आसपास के वातावरण को स्वच्छ और हरा-भरा बनाने में अपना योगदान देना होगा।

'पर्यावरण' पत्रिका के इस अंक में वायु प्रदूषण, जैवविविधता, जलवायु परिवर्तन, वन संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण, कैक्टस, ठोस अपशिष्ट प्रदूषण का प्रबंधन, आदि उपयोगी और ज्ञानवर्धक लेखों को संकलित किया गया है। हमारा उद्देश्य पाठकों को पर्यावरण संबंधी विषयों पर जानकारी उपलब्ध कराना है।

पत्रिका का प्रकाशन काफी श्रमसाध्य कार्य है। पत्रिका के लिए प्राप्त लेखों का तर्कसंगत चयन, उनका संकलन और संपादन एक जटिल प्रक्रिया है। इन सभी दायित्वों का पूरी निष्ठा से निर्वहन करने के लिए संपादक मंडल सदैव प्रयत्नशील रहा है, जिसके फलस्वरूप 'पर्यावरण' पत्रिका का 73वां अंक आपके समक्ष है। इस अंक के संकलन, संपादन और प्रकाशन के लिए संपादक मंडल के सभी सदस्य बधाई के पात्र हैं। साथ ही मैं पत्रिका में प्रकाशित लेखों के लेखकों को भी बधाई देती हूं।

'पर्यावरण' पत्रिका के इस अंक के बारे में हमारे सम्मानित पाठकों के सुझाव सादर आमंत्रित हैं। मंत्रालय और इसके नियंत्रणाधीन कार्यालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों से मेरा अनुरोध है कि मंत्रालय की इस महत्वपूर्ण पत्रिका को और अधिक रोचक, सारगर्भित और ज्ञानवर्धक बनाने के लिए अपना बहुमूल्य सहयोग दें।

(उर्मिला हरित)

पर्यावरण

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की पत्रिका (73वां अंक, 2025)

संरक्षक

श्री तन्मय कुमार

सचिव, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय

मार्गदर्शन

श्री सत्यजित मिश्रा

संयुक्त सचिव (राजभाषा प्रभारी)

संपादक

सुश्री उर्मिला हरित

निदेशक (राजभाषा)

संपादन सहयोग

श्री चांद किरण बेदी, उप निदेशक (राजभाषा)

श्रीमती सुमीत कौर, उप निदेशक (राजभाषा)

श्री नारायण मल्या एल., सहायक निदेशक (राजभाषा)

श्री समीर कुमार वर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा)

श्री प्रवीण कुमार, वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी

टंकण सहयोग

श्री राहुल कुमार, कार्यालय सहायक

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं है कि संपादक मंडल उनके विचारों से सहमत हो। लेखों की मौलिकता एवं प्रमाणिकता के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड, अलीगंज, नई दिल्ली

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय
पर्यावरण पत्रिका के 73वें अंक के लिए चयनित लेखों की सूची

क्र.सं.	रचना	रचनाकार (सर्वश्री / श्रीमती / सुश्री)	रचना का प्रकार	पृष्ठ
1.	लाइकेनः वन स्वास्थ्य के गुमनाम नायक	मनीष त्रिपाठी एवं कीर्तिका पडलिया	लेख	1
2.	ओरोजायलम इंडिकम (टाटपटांगा): एक बहुउद्देशीय लुप्तप्राय वृक्ष प्रजाति	डॉ स्वर्ण लता	लेख	4
3.	जीवन बड़ा है या सामरिक सुरक्षा व पर्यटन	जगदीश चंद्र पाण्डेय	लेख	8
4.	कुल्लू हिमाचल प्रदेश में एरोसोल ऑप्टिकलडेप्थ (AOD): प्रभाव एवं महत्त्व	शीतल चौधरी, केसर चंद एवं रेनू नेगी	लेख	11
5.	वनों के वर्तमान से भविष्य तकः सतत बीज संचयन के लिए रणनीति	मनीष कुमार विजय	लेख	14
6.	सामूहिक जन भागीदारी से पर्यावरण संरक्षण	अशोक चौधरी	लेख	17
7.	हिमाचल प्रदेश में पारंपरिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन का स्तर आकलन	किशोर कुमार, रेणुलता एवं आर.के. सिंह	लेख	20
8.	शहरों और उपनगरों के लिए इको-डिजाइन	अमल कुमारी	लेख	25
9.	विसादूरी (अगेरेटम कोनीजोइडस-एल) पर्यावरणीय स्थिरता और स्वास्थ्य में भूमिका	साक्षी ठाकुर, राकेश कुमार सिंह एवं रेनू लता	लेख	28
10.	ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्कः विश्व धरोहर और जैव विविधता का एक अद्भुत संगम	सुमति राठौर एवं राकेश कुमार सिंह	लेख	31
11.	हिमाचल प्रदेश लाहौल घाटी की मूल्यवान जैव विविधता	शिव पाल एवं स्वर्ण लता	लेख	34
12.	हिमाचल प्रदेश में वायु प्रदूषक और बादल फटने की घटनाएं: एक समीक्षा	ईशा ठाकुर, केसरचंद एवं रेनू लता	लेख	39
13.	प्रदूषण एक वैश्विक चुनौती, समाधान एवं वैश्विक प्रयास	डिम्पल कुमारी एवं राकेश कुमार सिंह	लेख	41
14.	उत्तर-पूर्वी भारत के नोलिड शलभों (शल्कपंखी) की विविधता	राहुल जोशी एवं नवनीत सिंह	लेख	44
15.	फाईटोरेमेडियशन द्वारा पारिस्थितिकी पुनर्स्थापनाः हिमालय में ठोस अपशिष्ट प्रदूषण का प्रबंधन	पर्णिका गुप्ता एवं वसुधा अग्निहोत्री	लेख	48
16.	वैकल्पिक रसायनों के माध्यम से स्थिरता की ओर बढ़ते कदमः नवाचार और अवसर	सोनकेश्वर शर्मा एवं परिश्मिता हाजरिका	लेख	52
17.	जलवायु परिवर्तन के बहुआयामी प्रभाव	प्राजवी शर्मा एवं केसर चन्द	लेख	55

18.	सतत वन प्रबंधन और संरक्षण के लिए रिमोट सेंसिंग और जीआईएस का महत्व	आकांक्षा थापा एवं स्वर्ण लता	लेख	57
19.	चिलगोजा : हिमाचल प्रदेश की एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक वन सम्पदा और आर्थिक आधार	नवीन एवं स्वर्ण लता	लेख	60
20.	हिमाचल प्रदेश के देववन और जैव विविधता संरक्षण में उनकी भूमिका	ऋषभ शर्मा एवं स्वर्ण लता	लेख	63
21.	औषधीय गुणों से परिपूर्ण–हेडिचियम स्पिकैटम	दृष्टि शर्मा एवं अखिल कुमार	लेख	65
22.	उच्च हिमालयी क्षेत्रों में ताप की चुनौतियों का समाधान: पैसिव सौर तापित आवास	अभिलाष ठाकुर, राकेश कुमार सिंह एवं केसर चन्द	लेख	68
23.	इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान: हिमालयी जैवविविधता और औषधीय संपदा	सुनील दत्त, डॉ शेर सिंह सामंत एवं डॉ ललित मोहन तिवारी	लेख	71
24.	बदलते भारत के गाँव: पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में	डॉ. खुर्शीद आलम खान	लेख	74
25.	जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध जैव विविधता एक प्राकृतिक सुरक्षा कवच	डॉ. मनोज कुमार शर्मा एवं नाज रिजवी	लेख	77
26.	अनिष्टकारक थ्रिप्स का कृषि एवं जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव	कौमुद त्यागी, शश पाल, देवांशु गुप्ता, धृति बनर्जी एवं विकास कुमार	लेख	80
27.	पर्यावरणीय संकट और स्वस्थ भविष्य	अंकुश मित्रा	लेख	83
28.	अपने मकान के लिए किसी का घर उजाड़ रहे हम	अजय कुमार मिश्रा	लेख	85
29.	कैक्टस की विभिन्न जातियां एवं उनका विवरण	डॉ. नवीन कुमार बोहरा	लेख	87
30.	खिरनी (मेनिनकारा हैक्सेन्ड्रा) – अल्प उपयोगी फल पादप	डॉ. नवीन कुमार बोहरा	लेख	96
31.	स्पीति घाटी में सौर तापित आवास: पर्यावरण अनुकूलता और ऊर्जा दक्षता की दिशा में एक कदम	अभिलाष ठाकुर, राकेश कुमार सिंह एवं केसर चन्द	लेख	99
32.	वायु, जल और पृथ्वी: प्रदूषण एक वैश्विक चुनौती	डिम्पल कुमारी एवं राकेश कुमार सिंह	लेख	102
33.	गोबर के भृंग (डंग बीट्ल्स): एक अज्ञात नायक	अपर्णा एस कलावटे	लेख	105
34.	भारतीय हिमालय क्षेत्र में बावड़ियों का जल आपूर्ति में महत्व, क्षय तथा संरक्षण नीतियां	धर्म चन्द, राकेश कुमार सिंह, रेनू लता एवं खेम चन्द	लेख	107
35	पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय में राजभाषा नीति का कार्यान्वयन	राजभाषा प्रभाग	रिपोर्ट	112

लाइकेन : वन स्वास्थ्य के गुमनाम नायक

मनीष त्रिपाठी एवं कीर्तिका पडलिया
गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल प्रदेश क्षेत्रीय केंद्र,
मोहल – कुल्लू, हिमाचल प्रदेश–175126
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड–263139

जब आप किसी जंगल में घूमे होंगे, तो आपने पेड़ों, चट्टानों और मिट्टी पर चिपके हुए छोटे–छोटे, रंग–बिरंगे धब्बों को देखा होगा। ये साधारण से दिखने वाले धब्बे लाइकेन कहलाते हैं। ये आमतौर पर प्रकृति के चित्रपट में मात्र सजावट के रूप में ही देखे जाते हैं। लेकिन, लाइकेन केवल वन की सजावट नहीं हैं; वे वन पारिस्थितिकी तंत्र की सेहत और स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

लाइकेन क्या हैं?

लाइकेन एकल जीव नहीं होते, बल्कि कवक और शैवाल (या कुछ मामलों में नील–हरित शैवाल) के बीच एक अद्भुत सहजीवी साझेदार होते हैं। कवक, एक स्थिर और सुरक्षित वातावरण प्रदान करता है, जबकि प्रकाश–संश्लेषण करने वाले उसके साथी हरे शैवाल या नील–हरित शैवाल प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से भोजन बनाते हैं। इस साझेदारी के कारण लाइकेन पृथ्वी के कुछ सबसे अलग वातावरणों में पनपने में सक्षम होते हैं, जैसे कि शुष्क रेगिस्तान, ठंडी टुंड्रा ।

पारिस्थितिकी में लाइकेन की भूमिका

लाइकेन वन पारिस्थितिकी तंत्र में बहुमुखी भूमिका निभाते हैं। वे केवल निष्क्रिय जीव नहीं हैं; वे ऐसे तरीकों से पर्यावरण में सक्रिय रूप से योगदान करते हैं जो कई अन्य प्रजातियों को लाभ पहुंचाते हैं।

1. वायु गुणवत्ता के सूचक

लाइकेन वायु प्रदूषण, विशेषकर सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन यौगिकों और भारी धातुओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। उनकी उपस्थिति, प्रचुरता और विविधता वायु गुणवत्ता की उत्कृष्ट संकेतक होती है। उन क्षेत्रों में जहां वायु गुणवत्ता खराब होती है, लाइकेन की आबादी घट जाती है या पूरी तरह से गायब हो जाती है, जिससे वे प्राकृतिक जैवीय सूचक (बायोइंडिकेटर) बन जाते हैं जो वैज्ञानिकों को पर्यावरण स्वास्थ्य की निगरानी करने में मदद करते हैं। किसी वन में एक स्वस्थ लाइकेन आबादी होने का मतलब है कि वहां की वायु गुणवत्ता अच्छी है, जो उस क्षेत्र के सभी जीवों के लिए महत्वपूर्ण है।

2. पोषक तत्व सृजन

लाइकेन खनिजों को तोड़कर वन में पोषक तत्वों के सृजन में योगदान करते हैं। वे उन सतहों पर आवश्यक पोषक तत्वों को निकाल सकते हैं, जिन पर वे उगते हैं, जैसे कि चट्टानें और जैविक पदार्थ। वे धीरे–धीरे इन्हें पर्यावरण में छोड़ते हैं। यह प्रक्रिया उन जगहों पर मिट्टी बनाने में मदद करती है, जहां यह अन्यथा दुर्लभ हो सकती है, जैसे कि नग्न चट्टानों पर। समय के साथ, लाइकेन एक ऐसा आधार बनाते हैं जो अन्य पौधों को जड़

पकड़ने और पनपने की अनुमति देता है, जिससे वन की कुल उर्वरता और स्थिरता में योगदान होता है।

3. जैव विविधता का समर्थन

लाइकेन विभिन्न जीवों के लिए निवास और भोजन प्रदान करते हैं। सर्दियों के महीनों में, जब अन्य वनस्पति कम होती है, तब रेनडियर कवकों, जैसे रेनडियरकवक (क्लेडोनिया रैंगिफरिना) पर निर्भर करते हैं। यह निर्भरता कठोर, बर्फीले वातावरण में उनके अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है। कई पक्षी प्रजातियाँ, जैसे अमेरिकन रोबिन और विभिन्न वार्बलर्स, अपने घोंसलों को बनाने के लिए कवकों का उपयोग करती हैं। कवकों द्वारा प्रदान किया गया आवरण घोंसलों को शिकारियों से बचाने में मदद करता है, जिससे पक्षी–पक्षियों की जनसंख्या के जीवित रहने में सहायता मिलती है। कवक छोटे जीवों, जैसे कीड़े और अरैक्निड के लिए सूक्ष्म आवास बनाते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ बीटल और माइट्स कवकों में निवास करते हैं, जो उन्हें आश्रय और नमी प्रदान करते हैं। इन जीवों के लिए पनाह बन कर लाइकेन अप्रत्यक्ष रूप से पूरे वन पारिस्थितिकी तंत्र की विविधता और स्वास्थ्य में योगदान करते हैं।

4. जल संरक्षण

लाइकेन बड़ी मात्रा में पानी अवशोषित कर सकते हैं, जिससे वन पर्यावरण में नमी बनाए रखने में मदद मिलती है। यह जल धारण क्षमता विशेष रूप से सूखे के समय में महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह आर्द्रता के स्तर को बनाए रखने और अन्य जीवों के लिए जल स्रोत प्रदान करने में मदद करती हैं। लाइकेन अपने जड़ जैसी संरचनाओं, जिन्हें राइजीन कहा जाता है, के साथ सब्सट्रेट को स्थिर करके मृदा अपरदन को भी कम करते हैं, जो मिट्टी के कणों को एक साथ बांधते हैं।

जलवायु परिवर्तन और लाइकेन

जैसे–जैसे जलवायु परिवर्तन तेज हो रहा है, वन स्वास्थ्य में लाइकेन की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। लाइकेन तापमान और आर्द्रता में होने वाले परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील होते हैं (उदाहरण: अस्निया एम्ब्लीओक्लेडा, एवरनिया प्रूनास्त्री, पेल्टिजेरा कैनाइना वैराइटी प्रीटेक्सटाटा, अम्बिलिकेरिया एंटार्कटिका, जैंथोरिया एलीगैन्स, डर्मेटोकार्पोन पॉलीफिलाइजम, क्लेडोनिया बोरियालिस, क्लेडोनिया एएफ. ग्रेसिलिस, हिमैटोर्मिया लुगुब्रिस और अस्निया औरैंटियाको–आत्रा), जिससे वे जलवायु परिवर्तनों के शुरुआती संकेतक बन जाते हैं। कुछ प्रजातियां घट सकती हैं या ठंडे, अधिक उपयुक्त वातावरण की ओर पलायन कर सकती हैं, जबकि अन्य अपनी सीमा का विस्तार कर सकती हैं।

इसके अलावा, लाइकेन कार्बन पृथक्करण (सीकुएस्ट्रेशन) करते हैं, यह पेड़ों की तुलना में छोटे पैमाने पर होता है। हालांकि, उनका योगदान कार्बन भंडारण में महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां वे बड़े क्षेत्रों को कवर करते हैं, जैसे कि बोरियल वन। वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को ग्रहणकर, लाइकेन जलवायु परिवर्तन को कम करने में एक छोटी लेकिन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वन स्वास्थ्य के लिए लाइकेन की सुरक्षा

महत्वपूर्ण होने के बावजूद, जैव विविधता संरक्षण के प्रयासों में लाइकेन की प्रायः अनभिज्ञता के कारण अनदेखी की जाती है। मानव गतिविधियाँ, जैसे कि वनों की कटाई, प्रदूषण और भूमि विकास, लाइकेन की आबादी पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकती हैं। वनों की सुरक्षा और प्रदूषण को कम करना इन महत्वपूर्ण जीवों को संरक्षित करने के लिए आवश्यक कदम हैं।

जैव विविधता संरक्षण रणनीतियों में पुराने–प्रौढ़ वनों की रक्षा को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जहां लाइकेन सबसे विविध और प्रचुर मात्रा में होते हैं। आम जनमानस को लाइकेन के महत्व के बारे में शिक्षित करना और उन्हें पर्यावरणीय निगरानी कार्यक्रमों में शामिल करना भी जागरूकता बढ़ाने और यह सुनिश्चित करने में मदद कर सकता है कि इन गुमनाम नायकों पर वह ध्यान दिया जाए जिसके वे हकदार हैं।

*****

ओरोजायलम इंडिकम (टाटपटांगा) : एक बहुउद्देशीय लुप्तप्राय वृक्ष प्रजाति

डॉ स्वर्ण लता
भा.वा.अ.शि.प–हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान,
शिमला, हिमाचल प्रदेश

औषधीय पौधे विश्व स्तर पर हर्बल उत्पादों का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। दुनिया भर में हर्बल दवाओं में रुचि बढ़ रही है क्योंकि ये कम लागत के होने के साथ बायोएक्टिव अवयवों से भरपूर होते हैं। उच्च औषधीय गुणों के कारण ये बिना किसी दुष्प्रभाव के विभिन्न रोगों के इलाज की क्षमता रखते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दुनिया भर में लगभग 80% व्यक्ति मूलभूत आवश्यकताओं के लिए औषधीय पौधों का उपयोग करते हैं। भारत में लगभग 8000 औषधीय पौध प्रजातियाँ लोगों द्वारा विभिन्न रोगों के इलाज तथा अन्य घरेलू उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग की जाती हैं। ओरोजायलम इंडिकम एक मध्यम आकार का बहुउद्देशीय औषधीय वृक्ष है जो बिग्नोनियेसी परिवार से संबंध रखता है। इसे आमतौर पर सोनापता, अरलु, टाटपटांगा, तटपलंगा, सोना, उलु, तौर, शयोनाक, शिवनक, मिडनाइट हॉरर एवं इंडियन ट्रंपेट ट्री के नाम से जाना जाता है। यह मुख्य तौर पर भोजन, दवाई, इत्र उद्योग, सामाजिक– धार्मिक कार्यों एवं हिमाचली पारंपरिक टोपियों में फूलों के तौर पर उपयोग किया जाता है। अपने अलग स्वरूप के कारण इस पेड़ को अक्सर सजावटी पेड़ के रूप में भी उगाया जाता है। इसके उच्च औषधीय गुणों के कारण इसका व्यापार भी होता है।

ओरोजायलम इंडिकम की फलियाँ

विवरण

ओरोजायलम इंडिकम एक मध्यम आकार का पर्णपाती पेड़ है जिसकी ऊंचाई 12 मीटर तक होती है। इसकी छाल नरम हल्के भूरे या भूरे रंग की होती है, जिसमें कॉरकी लैंटिसल्स भी होते हैं। इसकी पत्तियाँ 90–180 सेमी लंबी, बेलनाकार व चमकदार होती हैं। फूल बाहर से लाल–बैंगनी और भीतर से हल्के, गुलाबी–पीले रंग के गुच्छों में होते हैं। फूल रात में खिलते हैं और उनमें से तेज, बदबूदार गंध निकलती है जो परागण हेतु चमगादड़ों को आकर्षित करती है। इसकी फलियां 0.33–1मीटर लंबी और 5–10 सेमी चौड़ी होती हैं जो नीचे की ओर मुड़ी होती हैं और अक्सर लटकती तलवार की तरह दिखती हैं। इसमें फूल जून–जुलाई में लगते हैं और फल अक्टूबर–नवंबर में लगते हैं। इसमें बहुत सारे बीज फलियों में होते हैं जो चपटे, सफेद–पीले रंग के तथा पंखों की तरह होते हैं। जब इसकी फलियाँ पक जाती हैं तो इससे बहुत से बीज जमीन पर गिरते हैं ।

वितरण एवं आवास

ओरोजायलम इंडिकम विश्व में श्रीलंका, बांग्लादेश, ताइवान, यूनान, कंबोडिया, इंडोनेशिया, मलेशिया, लाओस, म्यांमार, नेपाल, चीन, फिलिपींस, थाईलैंड एवं वियतनाम में पाया जाता है। भारत में, यह वृक्ष हिमालय के शिवालिक क्षेत्र, पूर्वी और पश्चिमी घाट और उत्तर पूर्व भारत में उष्णकटिबंधीय वनों में 1200 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है। सिंबल (बोमबेक्स सीबा), कचनार (बौहिनिया वेरिगेटा), खैर (सेनेगल कैटेचू), बिल (एगल मार्मेलोस), नीम (एजारिकटा इंडिका), पलाश (ब्यूटिया मोनोस्पर्मा), शीशम (डालबरजिया सिस्सो),फेगडा (फाईकस पामेटा), पीपल (फाईकस रिलिजिओसा), ब्यूल (ग्रेवीया ऑपटिवा), कांबल (मैलोटस फिलिपेंसिस), दरेक (मेलिया अजेदाराच), आंवला (फाइलैंथस एम्ब्लिका) इत्यादि इसके साथ पायी जाने वाली मुख्य पौध प्रजातियाँ हैं।

उपयोगिता

- यह एक महत्वपूर्ण औषधीय प्रजाति है जिसका पारंपरिक रूप से लोगों द्वारा विभिन्न बीमारियों के उपचार हेतु उपयोग किया जाता है।
- इसकी छाल के काढे का उपयोग अल्सर, मुंह के कैंसर, खुजली, त्वचा रोगों व पाचन से संबंधित समस्याओं को ठीक करने के लिए किया जाता है।
- जड़ों का लेप चोटों एवं हड्डियों के फ्रैक्चर को ठीक करने में उपयोग होता है। सांप के काटने पर जड़ों की छाल के पेस्ट का उपयोग किया जाता है।
- बीजों का काढ़ा खांसी, फेफड़े एवं पेट से संबंधित बीमारियों को ठीक करने में होता है।
- तने की छाल पालतू पशुओं में लगने वाले कीड़ों को मारने के उपयोग में आती है।
- तने की छाल एवं फल का उपयोग कब्ज तथा तने का पेस्ट खुजली को ठीक करने के लिये किया जाता है।
- पत्तियों का काढ़ा पेट दर्द, पित, गठिया तथा जड़ों का काढ़ा किडनी की पथरी को ठीक करने के लिए उपयोग किया जाता है।
- पके हुए फल कृमिरोधी होते हैं जिसका उपयोग खांसी, पीलिया, बवासीर, चेचक, फुलबेरी, हृदय संबंधी बीमारियों, अपच एवं हैजा को ठीक करने के लिए किया जाता है।

- इसकी पत्तियों का काढ़ा पेट दर्द, जोड़, मांसपेशियों और हड्डियों की समस्याओं, बढ़ी हुई पीलिया, अल्सर, खांसी, फेफड़ों की समस्याओं को ठीक करने व पेट में गैस बनने को रोकने में उपयोग होता है।
- इसके फलों का उपयोग कृमिनाशक के तौर पर, गले की ग्रंथियों की पीड़ा को कम करने, हृदय संबंधी विकार, खांसी, बवासीर, पीलिया, अपच, चेचक, फुलबेरी और हैजा को ठीक करने में होता है।
- सूखे बीज के पाउडर का उपयोग महिलाएं गर्भधारण के लिए करती हैं।
- बीजों को आग की कालिख में पीसकर उसका लेप गर्दन पर लगाने से टॉन्सिल के दर्द से राहत मिलती है।
- तलवार जैसे फलियों या इसकी शाखाओं का उपयोग किसान धान के खेतों में केकड़ों को मारने के लिए करते हैं ।
- छाल से बना पेस्ट जानवरों के घावों पर लगे कीड़ों को मारने के लिए उपयोग किया जाता है।
- इसके फल और फूलों का सेवन सब्जी के रूप मे भी किया जाता है।
- इसके उच्च औषधीय गुणों के कारण यह पारंपरिक भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा में विभिन्न फॉर्मूलेशन/टॉनिक जैसे कि दशमूलारिष्ट, स्योनाका पुटपाका, स्योनाका सिद्धा घृत, बृहत्पंचमुल्यादि क्वाथ, अमृतारिष्ट, दन्त्यद्यरिष्ट, नारायण तेल, धन्वंतर घृत, ब्रह्म रसायन और च्यवनप्राश का महत्वपूर्ण घटक भी है।
- हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में इसके बीजों को पिरोकर किन्नौरी टोपी में फूलों के तौर पर उपयोग में लाया जाता है जिसे 'चामखा' के नाम से जाना जाता है जो लोगों द्वारा शादी–ब्याह, जन्म–मरण, त्योहारों, महत्वपूर्ण दिवसों इत्यादि में पहना जाता है।

हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में टाटपटांगा के बीजों से बने फूलों (चामखा) का उपयोग

संरक्षण की स्थिति

वर्तमान में दवा उद्योग में इसकी बढ़ती मांग के चलते इसके अत्यधिक उपयोग, विकास संबंधी कार्यों मुख्यतः सड़कों, जल विद्युत परियोजनाओं, इमारतों इत्यादि के निर्माण के कारण इसके पर्यावास का ह्रास तथा अरक्षणीय एकत्रीकरण/कटाई के कारण इस प्रजाति की प्राकृतिक संख्या में लगातार कमी आ रही है। बीज की कमजोर जीवक क्षमता स्वयं असंगति के साथ–साथ इसके एकमात्र परागणकर्ता इओनीक्टेरिस स्पैलिया की संख्या के कम होने से भी इस प्रजाति का अस्तित्व खतरे में है। आईयूसीएन द्वारा वर्ष 2022 में वैश्विक डेटा मूल्यांकन के दौरान ओरोजायलम इंडिकम को कम चिंता की श्रेणी में रखा गया है। यह भारत में संकटग्रस्त पौधा है। यह हिमाचल प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा एवं राजस्थान में लुप्तप्राय तथा आंध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ, सिक्किम, मेघालय, नागालैंड, असम एवं कर्नाटक में अतिसंवेदनशील प्रजाति की श्रेणी में शामिल है। यह एक महत्वपूर्ण पौधा है जिसका उपयोग दवा उद्योग, भारतीय चिकित्सा एवं लोक चिकित्सा प्रणाली में अत्यधिक किया जाता है। इसलिए लोगों की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति एवं दवा उद्योग में इसकी उच्च मांग को देखते हुए इस बहुमूल्य प्रजाति के संरक्षण हेतु उचित रणनीतियाँ बनाने की आवश्यकता है।

******

जीवन बड़ा है या सामरिक सुरक्षा व पर्यटन

जगदीश चंद्र पाण्डेय
गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड के तहत एनएमएचएस में कार्यरत

मेरे द्वारा बीते लगभग 3 दशकों से हिमालयी चिंतन से जुड़कर कार्य किया जा रहा है। इस दौरान अर्जित किए गए मेरे अनुभवों ने मुझे चिंतन के अनेक आयाम दिए। वर्ष 1997 से भारत सरकार, पर्यावरण, बन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अधीन गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान की विभिन्न परियोजनाओं तथा वैज्ञानिकों व अनुसंधानकर्ताओं के सान्निध्य में हिमालयी भू–भागों व समाजों के बीच अनुसंधान कार्यो में सहयोग करने के अनेक अवसर मिले। अनेक बार जमीनी स्तर पर अनेक अभिनव अनुभव भी अर्जित किए। मैंने देखा कि किस प्रकार हिमालय में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इसमें ट्री लाईन का खिसकना, अनेक वनस्पतियों व पेड़ों का अपने स्थान से ऊपर उगना, वन्यजीवों व कीट पतंगों में पारिस्थितिकी परिवर्तन आदि। जैसा कि लगभग दो–तीन दशक पूर्व हिमालयी क्षेत्रों में मानवीय हस्तक्षेप आज की तुलना में कम था। पहले लोगों खासकर पर्यटन का आवागमन कम था। पूर्व में स्थानीय लोगों, चरवाहों और कुछ प्रकृति प्रेमी, जिनकी संख्या सीमित थी, ही उच्च क्षेत्रों में जाते थे। वर्तमान में देखा गया है कि सामरिक और आर्थिक कारणों से रोड और वायु मार्ग से आवागमन लगातार बढ़ रहा है। इन उच्च क्षेत्रों में हिमनद लगातार पिघल रहे हैं। इनमें अनेक हिमनदों का आकार लगातार परिवर्तित हो रहा है। जिसका प्रभाव पर्यावरण पर ही नहीं बल्कि जैव विविधता पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है। स्थानीय सघन लोकज्ञान रखने वाले ग्रामीण बुजुर्ग भले ही उच्च डिग्री न रखते हों परंतु प्राकृतिक रूप से ज्ञान के भण्डार होते हैं। ये स्थानीय लोग यहां के निवासी होने के कारण अपने निजी जीवन में इसका अनुभव करते हैं और उनके द्वारा अपने परिवेश में हो रहे बदलावों को समझना एक दीर्घकालिक शोध से कम नही है। वे इन परिवर्तनों के गवाह हैं और उनके बीच एक सामान्य किंतु बड़ा प्रश्न है कि यदि जीवन ही संकट में होगा तो सामरिक सुरक्षा और पर्यटन का विकास किसके लिए? यदि ग्लेशियर सूखे या सदानीरा नदियां बहना बंद हो गई तो संवेदनशील हिमालयी क्षेत्रों में बनने वाली इमारतें, भवन व पर्यटन के नाम हो रहा विकास किसके काम आएगा। पहाड़ों की क्षमता, भूमि की स्थिति को नजरअंदाज कर खड़ा किया जा रहा निर्माण हमारी पीढ़ियों के लिए संकट ही पैदा करेगा। हाल में उत्तराखण्ड के जोशीमठ की विपदा इसका उदाहरण है।

मेरा मानना है कि संवेदनशील हिमालय की सुरक्षा और संरक्षण को लेकर अब वृहद स्तर पर चिंतन की आवश्यकता है। केवल देश ही नहीं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यह तय किया जाना ही चाहिए कि हिमालयी भू–भागों में यातायात की सीमा क्या हो? मेरे द्वारा जब वर्ष 2010 के करीब शोध और अनुसंधान कार्यो हेतु उत्तराखण्ड की दूरस्थ दारमा घाटी में आना जाना रहा तो मैंने वहां अनेक अविस्मरणीय अनुभवों को अर्जित किया।

दारमा घाटी उत्तराखण्ड के पिथौरागढ जिले की

धारचूला तहसील के अन्तर्गत आती है। जो धौली गंगा नदी के दोनों ओर स्थित है और मुख्य रुप से दर नामक ग्राम से शुरु होती है और अन्त में चीन की सीमा पर खत्म होती है। यह क्षेत्र हिमालयी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है एवं भौगोलिक अक्षांश 30058´ 48´´उ0 अक्षां – 800 18´ 38 ´´द0 अक्षां0 तक फैला है। जिसमें लगभग 60 तल हिमनद स्थित हैं। इस घाटी में दर, बोगलिंग, सेला, चल, नागलिंग, वलिंग, सोन दुग्तु, दातों, गो, मिलम, वोन, तेदांग, मार्च्छा, सीपू गोवा स्थित है जो नदी के बहाव के साथ नदी के दोनों ओर स्थित हैं। इस क्षेत्र में इन गांवों के साथ–साथ छोटे–छोटे जंगल भी स्थित है। जो यहां पर स्थित गांवों की वनों पर निर्भरता को दर्शाता है। इन गांवों में रहने वाली आबादी स्थानीय स्तर पर खेती भी करती है और जानवरों को भी पालती है जिनमे मुख्य रूप से संकर नस्ल के झुपु, बैल, गाय, खच्चर, भेड़, बकरी हैं। जैव विविधता समाज के लिए अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष लाभ देने के साथ ही मौसम परिवर्तन को भी नियन्त्रित करती है।

जैव विविधता– जैव विविधता से सम्पन्न इस घाटी में मुख्य रूप से वहां पर स्थित वनों से जलावनी लकड़ी, इमारती लकड़ी, चारा और महत्वपूर्ण जीवनदायनी औषधियां प्राप्त करते हैं। यह क्षेत्र औषधीय पादप बहुल क्षेत्र है और स्थानीय स्तर पर यहां के लोग औषधीय पादपों के बारे में व्यापक जानकारी रखते हैं। औषधियां मनुष्य और जानवरों के लिए भी बहुत लाभदायक होती हैं। इस घाटी के विभिन्न क्षेत्रों में उगने वाली सामान्य पादप प्रजातियां तालिका में निम्नवत् है:

क्र.	काष्ठ पादप वनस्पति नाम	समुद्र तल ऊंचाई (मीटर में)	प्रकृति	उपयोग
1	बेटुला यूरेलीपेसी	28000–4000 तक	जंगली	पेड़ की छाल का पूजा में प्रयोग और इमारती और जलावनी लकड़ी के रूप में प्रयोग
2	बर्बेरीकस लिपोकोट्रकस	2000–2500	जंगली	पत्तों का प्रयोग चारे के रूप में और जलावनी लकड़ी में और कृषि उपयोग हेतु
3	बर्बेरीकस सेमीकरफोलिया	2000–3000	जंगली	पत्तों का प्रयोग चारे के रूप में और जलावनी लकड़ी में और कृषि उपयोग हेतु
4	रोडेन्ड्र आरबोरियम	2000–3000	जंगली	जलावनी लकड़ी के रूप में और फूलों का पूजा हेतु प्रयोग
5	रोडेन्ड्र बारबेट्रम	3000–3500	जंगली	जलावनी लकड़ी के रूप में प्रयोग
6	रोडेन्ड्रोन्ड एन्थोपोगान	3500–4000	जंगली	पर्यावरण संरक्षण
7	रोडेन्ड्रोन्ड कैपुनलेटन ब	3500–4200	जंगली	मृदा संरक्षण
8	बेटुला एलेनोथेडिस	2500–2500	जंगली	जलावनी लकड़ी
9	टैक्सस वैकास	2500–3000	जंगली	छाल का प्रयोग ठोस पदार्थ में और इमारती लकड़ी के रूप में प्रयोग
10	एपीन पिन्ड्रो	3000–3600	जंगली	इमारती लकड़ी और जलावनी लकड़ी
11	पाइन्स पिन्ड्रो	3000–3600	जंगली	इमारती लकड़ी और जलावनी लकड़ी
12	सारेवस फोलियो	3000–3500	जंगली	इमारती लकड़ी और जलावनी लकड़ी

13	टिनोफी टिबिटियाना	300–3300	जंगली	जलावनी लकड़ी फल व औषधीय प्रयोग
14	ऐसकुलस इण्डिका	2500–2800	जंगली	जलावनी लकड़ी फल व औषधीय प्रयोग
15	जुगुलास रेन्डिया	2500–2800	जंगली	लकड़ी के रूप में व फल खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग
16	ऐलेक्स डिपेरिथाना	2500–3000	जंगली	पत्तियो का बकरी के चारे के रूप मे प्रयोग

इस घाटी में अतीस, हथजड़ी, कुटकी, चोरू, किलमोड़ा, बिल्ल, जम्बू, डोलू, लटियारी जैसी अनेक दुलर्भ मानव उपयोगी जड़ी–बूटी लगभग 2500 से 4500 मीटर ऊंचाई पर प्रकृति ने हमें उपलब्ध करायी हैं।

पुनः एक दशक बाद वर्ष 2020 में दारमा घाटी विचरण करने पर मैंने वहां ग्लेशियर और पादपों की स्थिति में अनेक परिवर्तन देखे। वहां चीन की सीमा तक बनने वाली सड़कें और अन्य अनेक प्रकार के मानवीय हस्तक्षेप माथे पर बल डालने वाले थे।

हिमालय में आर्थिक संसाधनों और जीवन का संरक्षण करना हम सबका परम दायित्व है। हमारे पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड के परिप्रेक्ष्य में देखा गया है कि मिलम ग्लेशियर क्षेत्र और पंचाचूली जैसे संवेदनशील क्षेत्र व पवित्र ऊँ पर्वत कैलाश अथवा गौमुख, चतुरंगी, थैलू यहां जाने वाला प्रत्येक प्रकृति प्रेमी देख सकता है कि यहां ग्लेशियर प्रभावित हो रहे हैं और उनका घनत्व भी बदल रहा है। पहले गंगोत्री ग्लेशियर के ऊपर से चढ़कर चतुरंगी और थैलू, ग्लेशियर जा सकते थे लेकिन अब वह इतना बैठ गया है कि वहां से जाना मुश्किल हो गया है। यही स्थिति मैंने पंचाचूली ग्लेशियर में देखी जो लगभग गिर चुका है। मेरी पिछली यात्राओं में मुझे यहा बहुत कम पर्यटक दिखते थे। वहां के स्थानीय दुग्तू और दांतो गांव में भी बहुत कम लोग दिख रहे थे। मुझे वहां 100 से अधिक पर्यटक नहीं दिखते थे लेकिन आज मैं वहां 1000 से 5000 तक पर्यटकों के दबाव को देख रहा हूँ। वहा सड़क पहुचने से मानव का हस्तक्षेप लगातार बढ़ता जा रहा है। वहां सड़क निर्माण से लेकर वाहनों के आवागमन बढ़ने का सीधा असर वहां के पर्यावरण पर पड़ रहा है। पहाड़ों पर कंपन, वायु प्रदूषण, वाहनों का शोर आदि निश्चित तौर पर वहां के पर्यावरण और प्रकृति के लिए घातक है। मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि वहा के समाज व भूमिधरों पर भी इसका सीधा प्रभाव पड़ रहा है। उनका सतत व प्रकृति से जुड़ा जीवन व उत्पादन भी प्रभावित हो रहा है। पर्यटन और व्यावसायिक दबावों से वहां भी संसाधनों का दोहन बढ़ा है जो चिंताजनक है। इससे भविष्य मे जैव विविधता का संकट भी गहराएगा जो मानव जीवन पर गंभीर खतरे ला सकता है।

यही कारण है कि इस लेख को मैंने यह शीर्षक भी दिया कि "जीवन बड़ा है या सामरिक सुरक्षा व पर्यटन" हमारी सदानीरा नदियों के सूखने, जैव विविधता के खत्म होने की चिंताओं ने मेरे मन में यह सवाल खड़ा किया कि यदि हमारा जीवन ही संकट में आ जाए तो पर्यटन और कथित विकास से हम कमाकर उसका करेंगे क्या? अतः मेरा मानना है कि हिमालय की गोद में बसे सभी राज्यों को यह चिंता करनी होगी कि हम इसके संरक्षण के लिए क्या करें? सरकार यदि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास करें तो हिमालयी क्षेत्रों में सीमा से अधिक निर्माण, सड़कों का जाल, यातायात को नियंत्रित करने की दिशा में व्यापक प्रभावी नियम बनाने की दिशा में कार्य कर सकती है, जो हिमालय और यहां के निवासियों के भविष्य के संकटों को कम करने में सहायक होगा।

******

कुल्लू हिमाचल प्रदेश में एरोसोल ऑप्टिकल डेप्थ (AOD): प्रभाव एवं महत्त्व

शीतल चौधरी, केसर चंद, रेनू नेगी
जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मोहल–कुल्लू
175126, हिमाचल प्रदेश, भारत

परिचय

उत्तर–पश्चिमी हिमालय में कुल्लू घाटी, अपने स्वच्छ वातावरण और प्राकृतिक सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है। हालाँकि, वातावरण में निलंबित ठोस या तरल कणों (एरोसोल) के बढ़ते स्तर ने वैज्ञानिकों को इस क्षेत्र की ओर आकर्षित किया है। एरोसोल ऑप्टिकल डेप्थ (AOD) वातावरण में मौजूद कणों द्वारा प्रकाश को अवशोषित या बिखेरने की दर को मापता है, जो एरोसोल की मात्रा को निर्धारित करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण मानक है। कुल्लू में स्थानीय और क्षेत्रीय वायु गुणवत्ता, जलवायु परिवर्तन की गतिशीलता और हिमालयी क्षेत्र पर पर्यावरणीय प्रभावों को समझने के लिए AOD का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह आयामहीन आंकड़ा, वायुमंडल के एक ऊर्ध्वाधर स्तंभ मे मौजूद एरोसोल की मात्रा है। AOD का 0 मान बताता है कि आकाश पूरी तरह साफ है और एरोसोल नहीं है, जबकि AOD का उच्च मान बताता है कि कणों की अधिक सांद्रता है, जिससे दृश्यता कम होती है और जलवायु और स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। कुल्लू में AOD मापने से प्राकृतिक और मानव निर्मित स्रोतों (धूल, जंगल की आग, कृषि अपशिष्ट जलाना, वाहन उत्सर्जन और औद्योगिक प्रदूषक) के प्रभावों का आकलन किया जा सकता है।

कुल्लू में AOD को प्रभावित करने वाले कारक

कुल्लू घाटी के AOD स्तर कई कारकों से प्रभावित होते हैं:

1. भौगोलिक स्थिति और स्थलाकृतिः कुल्लू की विशेष स्थिति, ऊँचे पर्वत श्रृंखलाओं से घिरी होने के कारण, प्रदूषकों को पकड़ने के लिए एक प्राकृतिक बेसिन बनाती है। घाटी की स्थलाकृति भी स्थानीय वायु प्रवाह को प्रभावित कर सकती है, जो एरोसोल के फैलाव और परिवहन को प्रभावित कर सकती है।

2. मौसमी परिवर्तनः AOD कुल्लू में बड़े मौसमी बदलाव दिखाता है। प्री–मानसून (अप्रैल से जून) में धूल के तूफानों और जैविक ईंधन के जलने की घटनाओं मे वृद्धि आमतौर पर AOD मानों को बढ़ाती है। मानसून (जुलाई से सितंबर) के दौरान एरोसोल को वातावरण से हटाने में बारिश का प्रभाव होता है, इसलिए AOD के मान कम होते हैं। AOD फिर से मानसून के बाद और सर्दी के मौसम (अक्टूबर से मार्च) में बढ़ता है, क्योंकि कम बारिश होती है और लकडी का उपयोग बढ़ता है तथा तापमान की उलट प्रक्रिया केवल सतह के पास प्रदूषकों को रोकती है।

3. मानव जनित गतिविधियाँः मानव गतिविधियाँ, जैसे वाहन उत्सर्जन, निर्माण कार्य और कृषि में

जैविक ईंधन का जलना, क्षेत्र में AOD स्तर में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। यात्रियों का आगमन और उसके बाद वाहनों की आवाजाही, खासकर गर्मियों में एरोसोल में भी वृद्धि होती है।

4. लंबी दूरी का परिवहनः पश्चिमी हवाएँ अक्सर थार रेगिस्तान और मध्य पूर्व के शुष्क क्षेत्रों से धूल और अन्य एरोसोल लाती हैं। यह दूरस्थ परिवहन कुल्लू और उत्तर–पश्चिमी हिमालय में एरोसोल बनाने में महत्वपूर्ण है।

कुल्लू में AOD के रुझान और अवलोकन

पिछले दो दशकों में किए गए नवीनतम अध्ययनों और अवलोकनों ने कुल्लू में AOD स्तर में एक दिलचस्प पैटर्न का पता लगाया है। 2006 से 2023 के बीच एकत्र किए गए डेटा से पता चलता है कि कुल्लू घाटी में औसत 500 AOD 0.27 से 0.44 तक धीरे–धीरे बढ़ा है, जो 57.4% है। जिसमें प्री–मानसून के दौरान सबसे अधिक आंकडे देखे गए हैं। AOD स्तरों में वृद्धि एरोसोल की सांद्रता में एक वृद्धि का संकेत देती है, जो स्थानीय स्रोतों और परिवहन किए गए एरोसोल दोनों के कारण हो सकता है। AOD कुल्लू घाटी में तरंगदैर्ध्यों–निर्भर है, छोटे तरंगदैर्ध्यों पर अधिक और बडे तरंगदैर्ध्यों पर कम। यह इस बात का संकेत है कि प्राकृतिक मोटे कणों, जैसे धूल, सूक्ष्म कणों पर हावी हैं, जो अक्सर मानवजनित प्रदूषण से जुड़े होते हैं, जैसे वाहन उत्सर्जन और औद्योगिक गतिविधियां।

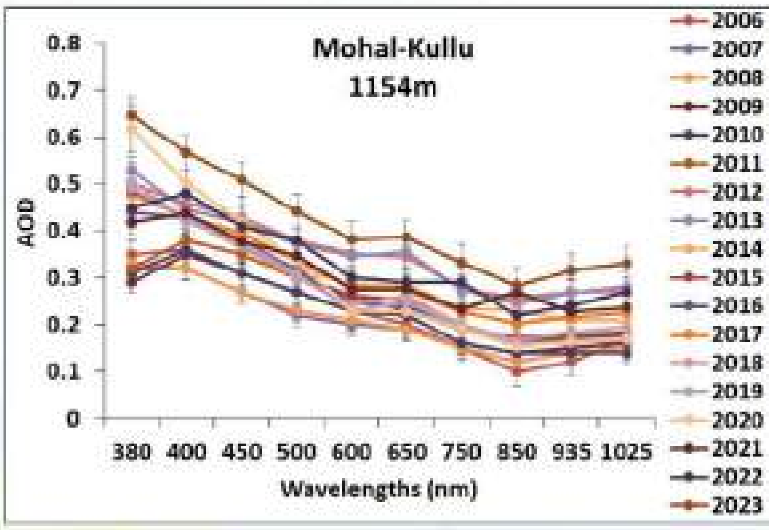

मोहल कुल्लू में AOD मापन पैटर्न–वर्ष 2006 से 2023 तक और बहु तरंगदैर्ध्य रेडियोमीटर

जलवायु और वायु गुणवत्ता पर AOD के प्रभाव

AOD स्तरों में वृद्धि का कुल्लू और आसपास के क्षेत्रों पर अनेक प्रभाव हैं:

1. जलवायु प्रभावः एरोसोल का सीधा प्रभाव क्षेत्रीय जलवायु पर होता है, जो विकिरण संतुलन को प्रभावित करता है। काले कार्बन और अन्य कणों द्वारा सूर्य के प्रकाश का अवशोषण करने से वातावरण में गर्मी बढ़ सकती है, जिससे स्थानीय मौसम पैटर्न प्रभावित होते हैं, उच्च AOD वातावरण में गर्मी को बढ़ा सकता है। एरोसोल के कारण कुल्लू के मोहल में औसत ताप दर 0.68 K 1 दिन (वर्ष 2006/2023) थी, जिसमें प्री–मानसून के दौरान सबसे अधिक गर्मी थी। यह वातावरणीय गर्मी के कारण ग्लेशियर पिघल सकते हैं, जिससे हिमालयी जल विज्ञान और जल संसाधन प्रभावित होते हैं।

2. वायु गुणवत्ता और स्वास्थ्यः खराब वायु गुणवत्ता और ऊंचे AOD स्तर मानव स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव डाल सकते हैं। सूक्ष्म कण (PM2-5) श्वसन पथ मे गहराई तक प्रवेश कर सकते हैं, जिससे श्वसन और हृदय रोग उत्पन्न होते हैं। कुल्लू में रहने वाले और आने वाले लोगों के, विशेष रूप से, उच्च आगमन दरों के दौरान स्वास्थ्य के लिए खतरा हो सकता है।

3. दृश्यता और पर्यटनः पर्यटकों के लिए कुल्लू का सबसे बड़ा आकर्षण, दृश्यता को भी एरोसोल के बढ़ते स्तर से प्रभावित हो सकता है। धुंध या स्मॉग से दृश्यता में कमी भी स्थानीय पर्यटन उद्योग को प्रभावित करती है, जो क्षेत्र की आय का एक बड़ा स्रोत है।

संकट निवारण और भविष्य की रणनीतियाँ

कुल्लू में बढ़ते AOD के मुद्दे को संबोधित करने के लिए एक बहु–आयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है:

– **बर्धित निगरानीः** AOD और संबधित वायुमंडलीय मानकों की निरंतर निगरानी एरोसोल के स्रोतों, परिवहन और प्रभावों को समझने के लिए आवश्यक है। अधिक जमीनी स्टेशन स्थापित करने और उपग्रह डेटा का उपयोग करने से व्यापक ज्ञान मिल सकता है।

– **सतत प्रथाएँः** एरोसोल के स्थानीय स्रोतों को कम करने में मदद मिल सकती है यदि सतत कृषि करना, जैविक ईंधन के जलने को कम करना और हीटिंग में स्वच्छ ईंधन का उपयोग करना प्रोत्साहित किया जाए।

– **जागरूकता और विनियमनः** प्रदूषण के बारे में लोगों को जागरूक करना और वाहन उत्सर्जन, निर्माण और औद्योगिक अपशिष्ट उत्पादन पर कड़े नियम लगाना, AOD स्तरों को कम करने के महत्वपूर्ण उपाय हैं।

– **क्षेत्रीय सहयोगः** एरोसोल के लंबी दूरी के परिवहन की भूमिका को ध्यान में रखते हुए, सीमा पार प्रदूषण को कम करने के लिए राज्यों और देशों के बीच क्षेत्रीय सहयोग महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

कुल्लू में AOD का अध्ययन क्षेत्र की जलवायु गुणवत्ता और गतिशीलता को स्पष्ट करता है। एरोसोल के स्तर को नियंत्रित करने के लिए व्यापक रणनीतियों की आवश्यकता है, जो सामुदायिक सहभागिता, निगरानी और नीति–निर्माण को शामिल करते हैं। कुल्लू के स्वच्छ पर्यावरण की रक्षा करना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हिमालय के पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखेगा और इसके निवासियों की सुरक्षा करेगा।

******

वनों के वर्तमान से भविष्य तकः सतत बीज संचयन के लिए रणनीति

मनीष कुमार विजय, वैज्ञानिक–बी

आईसीएफआरई–उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान,

जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

वन न केवल जैव विविधता संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने, आवश्यक पारिस्थितिकी सेवाएं प्रदान करने और दुनिया भर में लाखों लोगों की आजीविका हेतु सहायता प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालाँकि, बड़े पैमाने पर वनों की कटाई, पर्यावासों का क्षरण और जलवायु परिवर्तन, वन पारिस्थितिकी प्रणालियों के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न कर रहे हैं, जो स्थायी प्रबंधन के कार्यकलापों की तत्काल आवश्यकता पर जोर डालते हैं। टिकाऊ वानिकी का एक प्रमुख पहलू बीजों का जिम्मेदार संग्रहण है, जो प्राकृतिक पुनर्जनन और वनों के दीर्घकालिक भविष्य की नींव के रूप में कार्य करता हैं। इस लेख में, हम टिकाऊ बीज संचयन द्वारा वनो के लिए एक सुरक्षित भविष्य सुनिश्चित करने की रणनीतियों पर चर्चा करेंगे।

सतत बीज संचयन का महत्व

खराब पारिस्थितिकी तंत्र को बहाल करना वैश्विक प्रकृति संरक्षण प्रयासों का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। हमने हाल ही में 'पारिस्थितिकी तंत्र बहाली पर संयुक्त राष्ट्र दशक' की शुरुआत की है, जिसका उद्देश्य वनों के व्यापक विनाश और कमी को ठीक करना है। हालाँकि, पारिस्थितिकी बहाली के पैमाने के लिए देशी वनस्पति की सफल पुनः बहाली के लिए पर्याप्त मात्रा मे पौधों के बीजों की आवश्यकता होती है। जंगली पौधों के बीजों की बढ़ती मांग से बीज स्रोत के विलुप्त होने का खतरा बढ़ रहा है। नतीजतन, कुछ क्षेत्रों, विशेष रूप से अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और यूरोप ने बीजों के अधिकतम संग्रहण के लिए सीमाएं स्थापित करने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। ये सीमाएं (सुरक्षित बीज अंश) उदाहरण के लिए, अमेरिका में 20 प्रतिशत (पौधा संरक्षण गठबंधन, 2015), ऑस्ट्रेलिया में 10 प्रतिशत (येन्सन एट अल, 2021), और जर्मनी में 2 से 10 प्रतिशत की सीमा (प्रासे एट अल., 2010) पौधों की वृद्धि विशेषताओं के आधार पर निर्धारित की गई हैं।

सतत बीज संचयन वन जैव विविधता, पारिस्थितिकी तंत्र स्वास्थ्य और संरक्षण के लिए आवश्यक है। यह सुनिश्चित करता है कि किसी संसाधन का लाभ उपयोगकर्ताओं को समय के साथ लक्ष्य आबादी या समुदाय में अन्य प्रजातियों के पुनर्जनन, या पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना और कार्यप्रणाली को प्रभावित किए बिना उपलब्ध हो। टिकाऊ संचयन ढांचे के पांच मुख्य तत्व हैं। क्या इकट्ठा करना है, किस चरण में इकट्ठा करना है, कब इकट्ठा करना है, कैसे इकट्ठा करना है, और कितना इकट्ठा करना है। सतत संचयन यह सुनिश्चित करता है कि बीज बैंक बनाए रखा जाए जिससे की नए पौधे उत्पन्न हो सकें। विविध वृक्ष प्रजातियों से सतत बीज संचयन द्वारा बीज एकत्र करके और उनकी व्यवहार्यता सुनिश्चित करके, प्राकृतिक पुनर्जनन प्रक्रियाओं

को सुविधाजनक बनाकर वनों के भीतर आनुवंशिक विविधता बनाए रखी जा सकती है। यह आनुवंशिक विविधता बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूलन, कीटों और बीमारियों के प्रतिरोध और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के प्रावधान के लिए आवश्यक है। इसके अलावा, टिकाऊ बीज संचयन लुप्तप्राय और स्थानिक प्रजातियों के संरक्षण में मदद करता है, जो समग्र वन लचीलापन और पारिस्थितिकी तंत्र अनुकूलन स्थायित्व में योगदान देता है। इसी के मद्देनजर भारत सरकार के पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के प्रतिपूरक वन रोपण प्रबंधन और योजना प्राधिकरण (सीएएमपीए) द्वारा वित्त पोषित बीज प्रौद्योगिकी पर चल रही अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना में, चयनित वानिकी प्रजातियों के बीज प्रबंधन प्रोटोकॉल विकसित किए जा रहे हैं।

सतत बीज संचयन की चुनौतियाँ:

टिकाऊ बीज संचयन को कई चुनौतियों और खतरों का सामना करना पड़ता है। इनमें अत्यधिक दोहन, पर्यावास नुकसान, आक्रामक प्रजातियाँ और जलवायु परिवर्तन शामिल हैं, ये सभी बीजों की उपलब्धता और व्यवहार्यता को प्रभावित कर सकते हैं, जिससे प्राकृतिक पुनर्जनन प्रयासों की सफलता में बाधाएं उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त, संरक्षित क्षेत्रों से बीजों का अंधाधुंध संग्रह इन चुनौतियों को और अधिक बढ़ाता है और संरक्षण प्रयासों को कमजोर करता है। इसके अलावा, पुनर्स्थापना कार्यक्रमों में कुछ प्रजातियों के प्रति पूर्वाग्रह, साथ ही पुनर्स्थापना निष्फलताओं की रिपोर्ट करने में विफलता, पिछले अनुभवों से सीखने की हमारी क्षमता को सीमित करती है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए पारिस्थितिकी, सामाजिक और आर्थिक विचारों को एकीकृत करते हुए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

सतत बीज संचयन के लिए रणनीतियाँ:

1. निगरानी और मूल्यांकन: वन पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर बीज की उपलब्धता, वितरण और विविधता को समझने के लिए बीज आबादी और पारिस्थितिकी मूल्यांकन की नियमित निगरानी आवश्यक है। बीज उत्पादन, फैलाव तंत्र और अंकुरण दर पर डेटा एकत्र करके, शोधकर्ता और वन प्रबंधक टिकाऊ कटाई प्रथाओं के बारे में निर्णय ले सकते हैं।

2. पर्यावास संरक्षण और बहाली: बीज स्रोतों को बनाए रखने और वन पारिस्थितिकी तंत्र की दीर्घकालिक व्यवहार्यता सुनिश्चित करने के लिए अक्षुण्ण वन पर्यावासों की रक्षा करना महत्वपूर्ण है। संरक्षण पहल, जैसे संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना और

स्थायी भूमि प्रबंधन प्रथाओं को लागू करना, बीज उत्पादक पेड़ों और उनके पर्यावासों को सुरक्षित रखने में मदद कर सकता है।

3. **सामुदायिक जुड़ाव और भागीदारी:** बीज संचयन गतिविधियों में स्थानीय समुदायों को शामिल करने से वन संसाधनों पर प्रबंधन और स्वामित्व की भावना को बढ़ावा मिलता है। प्रशिक्षण कार्यक्रम, क्षमता–निर्माण पहल और न्यायसंगत लाभ–साझाकरण तंत्र समुदायों को उनकी आजीविका का समर्थन करते हुए और संरक्षण को बढ़ावा देते हुए स्थायी बीज संचयन में भाग लेने के लिए सशक्त बना सकते हैं।

4. **विनियमन और नीति:** अत्यधिक दोहन को रोकने और वन संसाधनों के स्थायी प्रबंधन को सुनिश्चित करने के लिए बीज संचयन प्रथाओं को नियंत्रित करने वाले नियमों और नीतियों को विकसित करना और लागू करना आवश्यक है। सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं के साथ संरक्षण उद्देश्यों को संतुलित करने वाले प्रभावी शासन ढांचे को स्थापित करने के लिए सरकारों, गैर सरकारी संगठनों, शोधकर्ताओं और स्थानीय हितधारकों के बीच सहयोग आवश्यक है।

5. **अनुसंधान और नवाचार:** अनुसंधान और नवाचार में निवेश करने से बीज जीव विज्ञान, प्रसार तकनीकों और बीज उत्पादक वृक्ष प्रजातियों की पारिस्थितिकी आवश्यकताओं के बारे में हमारी समझ बढ़ सकती है। बीज प्रसंस्करण, भंडारण और प्रसार प्रौद्योगिकियों में प्रगति से बीज की गुणवत्ता, व्यवहार्यता और अंकुरण दर में सुधार हो सकता है, जिससे पुनर्जनन प्रयासों की सफलता बढ़ सकती है।

निष्कर्ष: सतत बीज संचयन जिम्मेदार वन प्रबंधन की आधारशिला है, जो वन पारिस्थितिकी प्रणालियों के संरक्षण और बहाली की दिशा में एक मार्ग प्रदान करता है। बीज विविधता, आवास संरक्षण, सामुदायिक जुड़ाव और नीति सुधार को बढ़ावा देने वाली रणनीतियों को प्राथमिकता देकर, हम जंगल एवं उन पर आश्रित लोगों के लिए एक सुरक्षित भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं। जंगल से भविष्य तक, टिकाऊ बीज संचयन आने वाली पीढ़ियों के लिए एवं हमारी प्राकृतिक विरासत की रक्षा करने की प्रतिबद्धता का प्रतिनिधित्व करता है।

****

सामूहिक जन भागीदारी से पर्यावरण संरक्षण

अशोक चौधरी, पैरा–टेक्सॉनोमिस्ट, जैव–विविधता संरक्षक,
मास्टर ट्रेनर–एन.टी.एफ.पी. व मेडिसिनल प्लांटस
(जी.एस.डी.पी. पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय)

जलवायु परिवर्तन के गंभीर संकट का प्रभाव आम जन जीवन में प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। घटते वन, विलुप्त हो रही वन्य जीवों की प्रजातियां, निरंतर बढ़ रहा धरती का ताप, ग्लेशियरों का पिघलना व समुद्री जल स्तर का बढ़ना इत्यादि उदाहरण भयावह स्थिति को दर्शाते हैं। ये समस्याएँ ज्यादा पुरानी नहीं हैं, पिछले करीब 30–40 सालों में ये गंभीर संकट पैदा हुआ है। इससे मानव प्रजाति भी अछूती नहीं रही है, उसे भी तरह–तरह की कोरोना जैसी महामारियों का सामना करना पड़ रहा है। इनके समाधान हेतु विश्व से स्थानीय स्तर तक प्रयास किए जा रहे हैं, तरह–तरह के कार्यक्रम, योजनाएं बनाई जा रही हैं किन्तु आम जन की सहभागिता नहीं मिल पाती है।

लोगों में यह आम धारणा है कि ये तो सरकार या किसी एनजीओ का कार्यक्रम है इससे हमें क्या लाभ होगा। इस धारणा को बदलने से ही विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तन के संकट का समाधान खोजा जा सकता है।

हमारी भारतीय संस्कृति में सामाजिक, धार्मिक पद्धतिया इस प्रकार की रही है जिससे पर्यावरण संरक्षण को भी बल मिलता था। कुछ रीति–रिवाज इस प्रकार के थे जिनके वैज्ञानिक आधार भी हैं और जिन्हे जीवन में क्रियान्वित कर हम पर्यावरण संरक्षण में भागीदार बन सकते हैं।

सामूहिक श्रमदानः महात्मा गांधी के आश्रम का नियम था कि सभी आश्रमवासी मिलकर आश्रम परिसर की सफाई करेंगे। उन्होंने झाडू को क्रांति का सुदर्शन चक्र माना था। वर्ष 2014 में प्रधानमंत्री जी ने स्वच्छ भारत अभियान का शुभारंभ किया और शीघ्र ही इस अभियान ने जन आंदोलन का रूप ले लिया। पहले लोगों को बाहर सार्वजनिक स्थलों पर सफाई करने में शर्म, झिझक महसूस होती थी लेकिन स्वच्छ भारत अभियान के बाद सफाई का विचार हर घर, ऑफिस एवं जन–जन तक पहुंचा और इससे सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

गांव में लोग नियमित रूप से सार्वजनिक स्थलों पर सामूहिक श्रमदान के कार्य करते हैं, सामूहिक भोजन करते हैं इससे सार्वजनिक स्थल साफ होते हैं व प्रदूषण कम होता है। अवकाश के दिनों में शहरों में भी इस प्रकार के आयोजन हों जिससे युवा पीढ़ी को जोड़ा जाए ताकि उनमें पर्यावरण संरक्षण के रचनात्मक गुणों का विकास हो व हमारे परिवेश को भी साफ किया जा सके।

पारंपरिक जल स्रोतों का संरक्षणः पेयजल संकट का सामना हर गांव, शहर को करना पड़ रहा है। यह स्थिति तब है जब जलदाय विभाग द्वारा नियमित जल आपूर्ति की जा रही है। अधिकांश क्षेत्रों का भू–जल स्तर बहुत नीचे चला गया है ऐसी स्थिति में हमारे पारंपरिक जल स्रोतों का संरक्षण करना बहुत जरूरी है। भारत में

विशेष रूप से राजस्थान में कुएं, तालाब, बावड़ियों और खदीन की वृहद परंपरा रही है। सैकड़ों वर्षों पहले बने ये जल स्रोत आज भी मौजूद हैं। लेकिन इनमें से अधिकतर देख–रेख के अभाव में दुर्दशा की हालत में हैं। सामूहिक जन–भागीदारी से इनका संरक्षण किया जाए ताकि इनमें उपलब्ध जल से पेयजल आपूर्ति की जा सके। इन जल स्रोतों को अतिक्रमण कचरे से मुक्त कराया जाए। भारत में दीपदान का बहुत महत्व माना जाता है। लोग कई आयोजनों पर जल स्रोतों में दीपदान करते हैं। इन जल स्रोतों को समय–समय पर श्रमदान से साफ रखें। हमारे ये पारंपरिक जल स्रोत न केवल पेयजल की आपूर्ति करते हैं बल्कि पर्यटन को भी आकर्षित करते हैं। राजस्थान की चांद बावड़ी (दौसा) बाटाडू का कुआं व गड़ीसर (जैसलमेर) पदम तालाब (रणथंभौर) जेत्था बेरा व तुरजी का झालरा (जोधपुर) इत्यादि विश्व प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त हर गांव में तालाबों की श्रृंखला है जिनको संरक्षण कर जलप्रदाय की स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। इनमें संग्रहीत वर्षा जल से भू–जल स्तर में भी सुधार होगा।

कचरे का निस्तारण: हर बड़े शहर की म्युनसिपल्टी के सामने कचरे के निस्तारण की गंभीर समस्या रहती है। भारत में लोग सारा कचरा इकट्ठा कर देते हैं फिर वह कचरा जब डंपिंग स्टेशन में पहुंचता है तो उसको अलग करना टेढ़ी खीर हो जाता है। घरों, प्रतिष्ठानों से ही सूखा, गीला व हानिकारक कचरा अलग कर दिया जाए ताकि हमारे डंपिंग स्टेशनों पर कचरे का भार ना बढ़े। इंदौर एवं कई अन्य शहरों में इस कचरे का प्रबंधन कर इससे खाद, मिथेन गैस व बिजली बनाई जा रही है।

अपशिष्ट जल का निस्तारण: शहरों में घरों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकले अपशिष्ट जल से हमारी नदियां प्रदूषित हो रही हैं। इस अपशिष्ट जल में मरकरी, क्रोमियम, निकल, लेड, आर्सेनिक जैसे हानिकारक तत्वों की मात्रा रहती है। सीवरेज ट्रीटमेंट प्लांट्स में भी ट्रीटमेंट होने के बाद यह तत्व मौजूद रहते हैं। शहर के बाहरी क्षेत्रों में इस रसायन युक्त दूषित पानी से सब्जियों, फलों की खेती होती है और यह सब्जियां और फल शहर में आते हैं। इन सब्जियों में मौजूद दूषित रसायनों से लोगों को हिपेटाइटिस ए, हिपेटाइटिस बी, डायरिया, पीलिया व टाइफाइड सहित गंभीर बीमारियां हो सकती हैं। आजकल सब्जियों और फलों के माध्यम से माइक्रो प्लास्टिक हमारे शरीर में पहुंच रहा है।

पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों का सूत्रपात: ग्लासगो में कॉप–26 में भारत के प्रधानमंत्री द्वारा मिशन लाइफ की अवधारणा पेश की गई एवं इसे भारत में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव एंटोनियो गुटेरेस व प्रधानमंत्री द्वारा स्टैच्यू ऑफ यूनिटी से लागू किया गया। मिशन लाइफ कार्यक्रम के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण में भागीदार बनते हुए जैव–विविधता संरक्षण कार्यों को प्रोत्साहित कर स्थाई जीवन–शैली का आग्रह किया गया। इसमें जल, ऊर्जा की बचत, ठोस कचरा व ई–कचरा, स्वस्थ प्लास्टिक जीवन शैली, खाद्य प्रणालियों इत्यादि बिंदुओं के अंतर्गत कई सुझाव दिए गए जो आचरण योग्य थे व उनके क्रियान्वयन से लोगों को लाभ भी मिला। मिशन लाइफ जैसे कार्यक्रम न केवल सरकारी कार्यक्रमों से जनता को जोड़ते हैं बल्कि लोगों की रचनात्मकता व उनकी रुचि को बढ़ाते हैं और पर्यावरण संरक्षण का कार्य कर रहे लोगों को प्रोत्साहन भी प्रदान करते हैं।

प्लास्टिक का विकल्प: प्लास्टिक से बने सामानों का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है परंतु प्लास्टिक से होने वाले प्रदूषण के कारण हमारा

स्वास्थ्य, पर्यावरण खतरे में है। हमें प्लास्टिक से बने उत्पादों के बजाय लकड़ी, मिट्टी, बांस से बने उत्पादों को प्राथमिकता देनी होगी। सिंगल यूज प्लास्टिक के स्थान पर कपड़े जूट के थैले काम में ले। प्लास्टिक के बर्तनों के स्थान पर स्टील, कांच के बने बर्तनों का उपयोग करें जो टिकाऊ हैं और लंबे समय तक चलते है।

सार्वजनिक परिवहन व साइकलिंगः हर व्यक्ति दैनिक जीवन में पेट्रोल, डीजल और गैस से चलने वाले दोपहिया, चार पहिया वाहनों का प्रयोग करता है लेकिन देश में पेट्रोल, डीजल जैसे संसाधन सीमित हैं। आज हर बड़े शहर और कस्बे में सुबह–शाम ट्रैफिक जाम की स्थिति देखी जा सकती है। इन वाहनों से निकलने वाला हानिकारक धुआं हमारे स्वास्थ्य, पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है। इसके समाधान हेतु सार्वजनिक परिवहन के साधनों जैसे मेट्रो, बस, टेंपो इत्यादि का प्रयोग करें। कम दूरी के लिए साइकिल से जाएं। जिम में ट्रेडमिल की बजाय किसी पार्क में पैदल घूमें। इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा दे ताकि हमारे पर्यावरण संरक्षण के कार्यों को बल मिले और पेट्रोल डीजल की खपत कम करके कार्बन के उत्सर्जन को घटाया जा सके।

पर्यावरण का संरक्षण हम सभी की सामूहिक जिम्मेदारी है इसलिए प्रत्येक व्यक्ति एक पर्यावरण अनुकूल आदत को अपनाएं। सरकारी, गैर–सरकारी संस्थाओं के रचनात्मक कार्यक्रमों में भाग लें। जो लोग किसी संस्था, क्लब से जुडे हैं वह अपने क्लब, संस्था के माध्यम से अपने–अपने क्षेत्र में पौधारोपण, श्रमदान, जन–जागरूकता की संगोष्ठियां आयोजित कर जनमानस में जागृति फैलाएं।

*****

हिमाचल प्रदेश में पारंपरिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन का स्तर आकलन

किशोर कुमार, रेणुलता एवं आर.के. सिंह

गोविन्द वल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मोहल, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

प्राचीन समय से ही हिमाचल प्रदेश सहित सम्पूर्ण भारतीय हिमालयी परिक्षेत्र में कृषि के साथ–साथ पारंपरिक रूप से देशी मधुमक्खी का पालन किया जाता रहा है। हिमाचल प्रदेश अन्य हिमालयी राज्यों की तुलना में नकदी फसलों के उत्पादन में अग्रणी भूमिका निभाता आ रहा है और फल एवं कृषि उत्पादन यहाँ की आजीविका के प्रमुख स्रोतों में से एक है। सेब, कीवी, चेरी, खुमानी, बादाम, पलम, नाशपाती, पर्सिमोम, अखरोट एवं अन्य मेवे तथा सब्जियां यहाँ की प्रमुख नकदी फसलों मे सम्मिलित हैं। राज्य में उत्पादित होने वाली अधिकांश फसलें उत्पादन सुनिश्चित करने के लिये परागण हेतु मधुमक्खियों एवं अन्य कीट परागणकर्ताओं पर निर्भर हैं और देशी मधुमक्खी (Apiscerana) पर्वतीय क्षेत्रों की अधिकांश फसलों के लिये सबसे महत्वपूर्ण परागणकर्ता के रूप में जानी जाती है। वर्तमान समय में आधुनिक कृषि एवं कृषिकरण को भारतवर्ष में अपनाये जाने के बाद हमारी जैव–सम्पदाओं, प्राकृतिक संसाधनों, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के पारितंत्र की गुणवत्ता में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। खाद्यानों की अत्यधिक माँग की पूर्ति हेतु फसलों मे रासायनिक उर्वरकों एव कीटनाशकों का उपयोग अत्यधिक मात्रा में होने के परिणामस्वरूप मधुमक्खी एवं अन्य सहयोगी कीट परागणकर्ताओं की आबादी प्रभावित होने के साथ ही प्रकृति में मधु, फसल उत्पादकता एवं खाद्य सुरक्षा भी प्रभावित हो रही है।

हिमाचल प्रदेश में समुदाय आधारित पारंपरिक देशी मधुमक्खी पालन

भारतवर्ष में मधुमक्खियों की छह प्रजातियाँ मुख्य रूप से शहद उत्पादन का कार्य करती हैं जिनमें एपिसडोरसाटा (रॉकबी / जंगली मधुमक्खी), एपिसलेबरियोसा (हिमालयनजायंट हनी बी / क्लिफ हनी बी), एपिससेरानाइंडिका (भारतीय स्वदेशी मधुमक्खी), एपिसफ्लोरिआ (बौना मधुमक्खी), एपिसमेलिफेरा (यूरोपीय या विदेशी मधुमक्खी) और टेट्रागोनुलाइरीडिपनिस (डैमर या स्टिंगलेस मधुमक्खी) मुख्य हैं। हिमाचल प्रदेश सहित सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्रों में केवल एपिससेरानाइंडिका (भारतीय छत्ता मधुमक्खी) ही सदियों से पारंपरिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन हेतु उपयोग में लायी जाती रही हैं। देशी मधुमक्खियों (एपिससेराना) को आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार के मधु छत्तों, दीवार छत्ता, खोखला तना छत्ता, फ्रेम युक्त डब्बा मौन घर, आधुनिक फ्रेम युक्त मृदा छत्ता, सुपर चौम्बर छत्ता आदि) का उपयोग कर मधुमक्खी पालन के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है। खासतौर पर भारतवर्ष के अधिकांश क्षेत्रों में सदियों से देशी मधुमक्खी पारंपरिक मधुमक्खी पालन में उपयोग लायी जा रही हैं। प्रारम्भिक दौर मे देशी मधुमक्खियों को सीमित संसाधनों के अनुसार केवल पारंपरिक छत्तों जैसे खोखला तना छत्ता (लाग हाइव), दीवार छत्ता (लवबाक्स) को

ही इस कार्य के लिये उपयोग में लाया जाता था। कालान्तर में आधुनिक छत्ता (फ्रेमयुक्त डिब्बा छत्ता, फ्रेम युक्त मृदा छत्ता, सुपर चौम्बर छत्ता आदि) का उपयोग भी अनेक पर्वतीय मधुमक्खी पालकों द्वारा संसाधनों के अनुसार मौनपालन के लिये इस्तेमाल किया जा रहा है। वर्तमान समय में कुछ हिमालयी क्षेत्रों में डैमर मधुमक्खी का भी पारंपरिक मधुमक्खी पालन में उपयोग हो रहा है परन्तु इस प्रजाति की वार्षिक शहद उत्पादन क्षमता बहुत कम है।

मधुमक्खियों से संबंधित पारंपरिक ज्ञान एवं छत्तों की स्थिति

पिछले कई दशकों से मधुमक्खी सहित अन्य सहायक कीट परागणकर्ताओं की आबादी पर निरन्तर गिरावट का आभास वैश्विक स्तर पर किया गया है और सबसे अधिक मधुमक्खियों की स्थानीय प्रजातियों की आबादी के स्तर में गिरावट का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से वैश्विक स्तर पर वैज्ञानिकों, प्रकृतिवादियों एवं मधुमक्खी पालकों के द्वारा किया गया है। इसका प्रमाण प्रत्यक्ष रूप से फल, तिलहन, मेवे, मसाले, सब्जियों, दलहन की उत्पादकता में गिरावट, शहद की सालाना उत्पादन मात्रा में वर्ष दर वर्ष कमी, जैव विविधता एवं पर्यावरण की गुणवत्ता में कमी होना हैं। हिमाचल प्रदेश एक अग्रणी नकदी फसल उत्पादक राज्य है तथा अधिकांश नकदी फसलें परागण एवं उत्पादन हेतु देशी मधुमक्खियो पर निर्भर रहती हैं। देशी मधुमक्खियों की उपयोगिता को ध्यान मे रखते हुये हिमाचल प्रदेश मे देशी मधुमक्खियों के स्तर आकलन से संबंधित अध्ययन हेतु सम्पूर्ण जानकारी एकत्रित करने के लिए एक मानक प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। पारंपरिक मधुमक्खी पालन संबंधी जानकारी को देशी मधुमक्खी पालकों से एकत्रित करने के लिए देशी मधुमक्खी (एपिससेराना) की स्थिति के आकलन के लिए प्रश्नावली–आधारित सर्वेक्षण हिमाचल प्रदेश के किन्नौर, कुल्लू, कांगड़ा और मंडी जिलों में आयोजित किया गया था। देशी मधुमक्खी के सर्वेक्षण हेतु चयनित जिलों की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, ऊंचाई, वन वनस्पति और कृषि फसल के प्रकार एक दूसरे के भिन्न हैं। 04 जिलों में से, भारतीय मधुमक्खी के विभिन्न पहलुओं पर जानकारी इकट्ठा करने के लिए 158 गांवों, 12 ब्लॉकों की 77 पंचायतों का प्रतिनिधित्व करने वाले कुल 1560 परिवारों (किसानों/मधुमक्खी पालकों) का सर्वेक्षण किया गया। लगभग सभी उत्तरदाताओं को भारतीय मधुमक्खी के बारे में सामान्य जानकारी थी। साक्षात्कार में शामिल उत्तरदाताओं में से 50% पिछले 10–20 वर्षों से भारतीय मधुमक्खी के बारे में जानते थे, 20% (50 वर्ष) में अधिक समय से देशी मधुमक्खी के बारे में जानकारी रखते थे। कुल सर्वेक्षण में से सबसे अधिक पारंपरिक मधुमक्खी पालन कुल्लू एवं मंडी जिलों में किया जाता है एवं सबसे कम कागड़ा जिले मे क्योंकि वहाँ के मधुमक्खी पालको ने विदेशी मधुमक्खी पालन तकनीक को अपनाना प्रारम्भ किया है। औसतन अधिकतम सजीव दीवार मधुमक्खी के घरों की संख्या 1–5 और कुछ ही पारंपरिक मधुमक्खी पालकों के पास 5–10 सजीव दीवार मधुमक्खी घर पाये गये और लगभग पारंपरिक मधुमक्खी पालकों के पास 1–5 खाली देशी मधुमक्खी के घर पाये गये। सर्वेक्षण में एकत्र की गई सूचना के विश्लेषण से स्पष्ट संकेत मिलता हैं कि पारंपरिक मधुमक्खी पालन हेतु सर्वाधिक दीवार मधुमक्खी घर (वाल–हाईव) एवं खोखले तने (लाग–हाईव) मधुमक्खी घर कुल्लू एवं मंडी जिलों में पाये गये।

सर्वेक्षण के दौरान एक बात स्पष्ट रूप से सामने आयी कि ग्रामीण क्षेत्रों में जो भी बुजुर्ग या अन्य मधुमक्खी पालन प्रबंधन सबधी जानकारी रखते हैं वे अपने पारिवारिक सदस्यों के अलावा अन्य किसी के साथ भी उस पारंपरिक ज्ञान को साझा नहीं

करते हैं जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में मधुमक्खी पालकों की संख्या में निरंतर कमी हो रही है जिसके परिणामस्वरूप देशी मधुमक्खी पालन एवं मधुमक्खी की आबादी में निरंतर कमी आती रही है।

हिमाचल प्रदेश में पारंपरिक मधुमक्खी पालन प्रथाएँ

भारतीय मधुमक्खी पालन हेतु पारंपरिक छत्तों की उपयोगिता एवं मधु उत्पादन का स्तर आकलन

देशी मधुमक्खी पालन हेतु दीवार मधुमक्खी घर की उपयोगिता के विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन के दौरान अधिकांश पारंपरिक मधुमक्खी पालक इस बात से सहमत थे कि दीवार मधुमक्खी घर देशी मधुमक्खियों की आबादी बढ़ाने, उच्च शहद उत्पादन और जलवायु परिवर्तन (शीत / ठण्ड) सुरक्षा और मौसम के दौरान मधुमक्खियों के झुंड को आकर्षित करने के लिए उपयुक्त हैं। वास्तव में देशी मधुमक्खी दीवार एवं लकड़ी के खोखले तनें (लाग हाईव) के घर निवास हेतु अत्यधिक प्रसंद करती हैं क्योंकि प्रकृति में स्वछन्द रूप से मधुमक्खी या तो पेड़ों के सूखे खोखले तनों, पहाड़ों के अन्दर, गुफाओं आदि को ऋतु परिवर्तन के हिसाब से रहने हेतु चुनती हैं। अधिकांश पारंपरिक मधुमक्खी पालक सहमत थे कि इस प्रकार के पारंपरिक मधुमक्खी के घरों में मधुमक्खी की आबादी बढ़ती रहती है परन्तु शहद निष्कासन के समय मधु छत्तों सहित मधुमक्खी वंश (अंडे, लार्वा, बच्चे) का काफी मात्रा में नुकसान भी हो जाता है। पारंपरिक मधुमक्खी पालकों ने यह भी बताया कि देशी मधुमक्खी वर्ष में ऋतु परिवर्तन काल में दो बार (ग्रीष्म ऋतु की शुरुआत एवं शीत ऋतु आगमन से पहले) मधुमक्खी घर में रानी मधुमक्खी की संख्या एक से अधिक होने पर घर बदलती (स्थान परिवर्तन) है। इस प्रकार की स्थिति में मधुमक्खी के झुण्ड को पकड़कर फ्रेमयुक्त मधुमक्खी बाक्स में रखना ज्यादा सुविधाजनक है जिसे सुविधानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से पहुंचाया जा सकता है

हिमाचल प्रदेश में भारतीय पारपरिक मधुमक्खी पालन में शहद निष्कासन सामान्यतया वर्ष में 02 बार (अप्रैल–मई तथा सितम्बर–अक्तूबर) करते हैं। भारतीय मधुमक्खी के शहद के विभिन्न प्रकार के मधुमक्खी छत्तों में शहद उत्पादन की सीमा में मधुमक्खी के छत्तों में मधुमक्खी की आबादी की क्षमता पर निर्भर करती है। दीवार मधुघर से एक बार में सामान्यतया 1–3 किलोग्राम शहद का निष्कासन करते हैं जबकि यह मात्रा क्षेत्र विशेष में (3–6 किलोग्राम) और (6–10 किलोग्राम) तक भी हो सकती है।

भारतीय मधुमक्खी पालन का कारण: अध्ययन के दौरान मधुमक्खी पालकों ने बताया कि पर्वतीय सीमांत किसान भी कम लागत पर स्वयं के संसाधन एवं मेहनत करके देशी मधुमक्खी पालन प्रारम्भ कर सकता है और इसमें अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता नहीं होती है। अधिकांश पारंपरिक मधुमक्खी पालकों ने बताया कि यह पर्वतीय ठण्डे मौसम के लिए उपयुक्त, व्यक्तिगत उपयोग के लिए शहद उत्पादन, व्यक्तिगत उपयोग, व्यवसाय और आजीविका के लिए शहद, और मधुमक्खियां बेचकर आजीविका साधन और अन्य लाभ जैसे लागत प्रभावी, परागण, उच्च फसल उत्पादन के साथ–साथ जैव विविधता संरक्षण आदि में लाभदायक है।

भारतीय मधुमक्खियों की घटती आबादी के संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण सुझाव :

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जिलों के अनेक मधुमक्खी पालकों से देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन संबंधी विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन के सर्वेक्षण के आधार पर हिमाचल प्रदेश में भारतीय मधुमक्खियों की संख्या में कमी के लिए निम्नलिखित प्रमुख कारक जिम्मेदार हैं:

पुराने पत्थर, लकड़ी मिट्टी के घरों की जगह आधुनिक सीमेंट घर, कृषि–रसायनों का अत्यधिक उपयोग, मधुमक्खी वनस्पतियों और प्राकृतिक आवास की कमी, जलवायु परिवर्तन, एकल कृषिकरण, मधुमक्खी पालन से संबंधित प्रशिक्षण और मधुमक्खी के संरक्षण संबंधित सार्वजनिक जागरूकता में कमी (चित्र 1)।

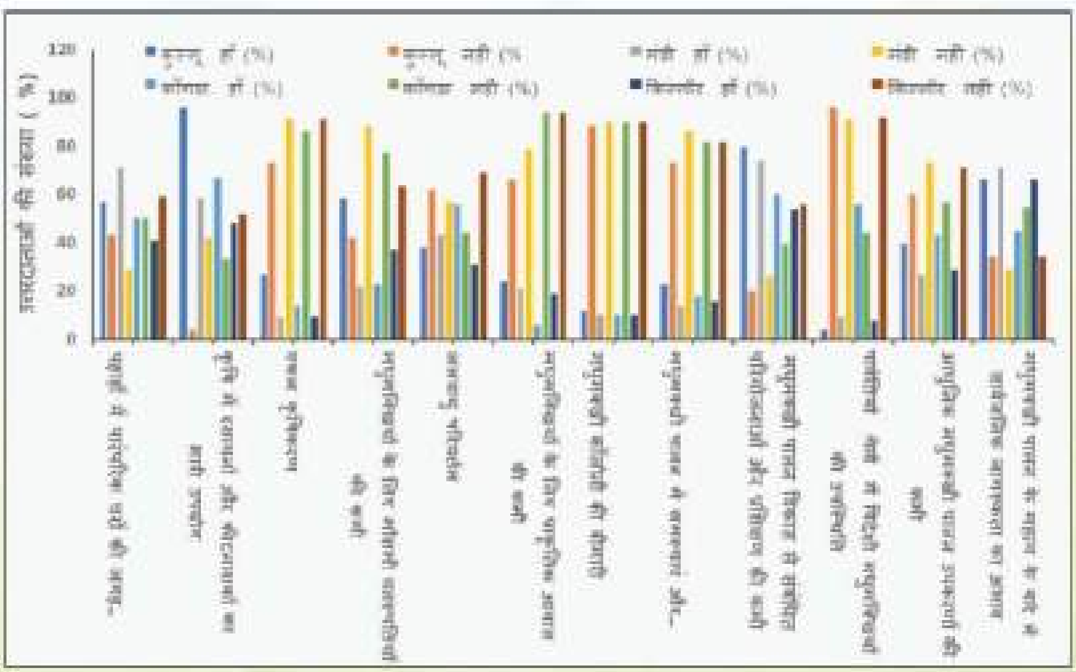

हिमाचल प्रदेश में देशी मधुमक्खी की आबादी प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक

हिमाचल प्रदेश में देशी मधुमक्खियों की आबादी में हो रही गिरावट को कम करने और मधुमक्खियों की आबादी के संरक्षण हेतु सुझाव निम्नवत हैं:

i. मधुमक्खी पालन हेतु पहाड़ी क्षेत्रों में शेष बचे सक्रिय पारंपरिक मधुमक्खी के छत्तों वालहाईव (दीवार मधुमक्खी घर) एवं लॉग हाईव (लकड़ी का खोखला तना मधुमक्खी घर) का यथासमय संरक्षण सुनिश्चित करना।

ii. कृषि में जैविक खादों के उपयोग के साथ–साथ विविध कृषि बागवानी पद्धतियों को अपनाना।

iii. रासायनिक उर्वरकों एवं कीट नाशकों का संतुलित उपयोग सुनिश्चित करना।

iv. जलवायु परिवर्तन के अनुसार मधुमक्खी पालन का प्रबंधन करना।

v. एकल कृषिकरण के साथ–साथ पारंपरिक मिश्रित खेती को अपनाना।

vi. देशी मधुमक्खियों के पसंदीदा मौन वंशीय पुष्पीय पादपों की सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करके वृहद वृक्षारोपण कार्यक्रमों का विभिन्न क्षेत्रों में आयोजन करना चाहिए। जिससे मधुमक्खियों को वर्ष भर पराग एवं मधुरस की आपूर्ति सुनिश्चित होगी जो कि मधुमक्खियों के संरक्षण, कृषि एवं वन्य परितंत्र में परागण, फल विकास एवं गुणवत्ता युक्त मधु उत्पादन में उपयोगी सिद्ध होगा।

vii. समाज के विभिन्न क्षेत्रों (ग्रामीण / शहरी) की आबादी हेतु मधुमक्खियों द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सेवाओं जैसे परागण / जैव–विविधता / पर्यावरण संरक्षण, फसल विकास, खाद्यान्न सुरक्षा, मधु उत्पादन एवं आजीविका विकास से संबंधित महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के बारे में जागरूक करना।

viii. मधुमक्खियों के संरक्षण हेतु मौन वंशीय पुष्पीय पादपों की उपयोगिता एवं संरक्षण हेतु समाज के विभिन्न वर्गों को जागरूक करना।

ix. पर्वतीय क्षेत्रों के मधुमक्खी पालकों को केवल देशी मधुमक्खी के पालन प्रबंधन हेतु प्रोत्साहित करना जिससे कि देशी मधुमक्खी के संभावित आवास क्षेत्रों में विदेशी प्रजाति की मधुमक्खियों की उपस्थिति बाधित होगी तथा देशी मधुमक्खी की आबादी सुरक्षित रहेगी।

x. देशी मधुमक्खी पालन प्रबंधन प्रशिक्षण संबंधी कार्यक्रमों के आयोजनों का सूचना प्रसारण के विभिन्न माध्यमों से व्यापक प्रचार प्रसार सुनिश्चित करना।

xi. देशी मधुमक्खी के संरक्षण एवं उपलब्धता को सामान्य जनमानस हेतु सहज बनाने के उद्देश्य से क्षेत्र विशेष की आवश्यकतानुसार भारतीय मधुमक्खी प्रजनन विकास केन्द्र की स्थापना करना।

xii. देशी मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन को रोजगार परख बनाकर अधिक से अधिक युवा वर्ग को मधुमक्खी पालन प्रबंधन अपनाकर सतत आजीविका विकास सुनिश्चित करने हेतु जागरूक करना।

xii. विभिन्न देशी मधुमक्खी पालकों से वार्ता के दौरान सर्वसम्मति से एक बात उभर कर सामने आयी कि ग्रामीण एवं दूर–दराज क्षेत्रों के देशी मधुमक्खी पालकों को मधुमक्खी पालन हेतु आवश्यक आधुनिक मधुमक्खी पालन सामग्री की सहज उपलब्धता सुनिश्चित करना।

****

शहरों और उपनगरों के लिए इको–डिजाइन

अमल कुमारी
आशुलिपिक ग्रेड–II
भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, कोलकाता

शहरों और उपनगरों के लिए इको–डिजाइन, एक संधारणीय पर्यावरण बनाने के लिए शहरी प्रारूप, नियोजन और प्राकृतिक प्रणालियों के संरक्षण की समावेशी प्रक्रिया है। इको–डिजाइन का अर्थ उन चीजों को मिलाना है जो पर्यावरण को अपनी समग्रता बनाए रखने के लिए और लोगों को गुणवत्तापूर्ण और संतुष्टिदायक जीवन जीने के लिए चाहिए।

इको–डिजाइन के स्वयंसिद्ध सिद्धांत (एक्सिओम)

यद्यपि विशेष परिस्थितियों के लिए विशेष आकलन की आवश्यकता होती हैं, लेकिन जब हम शहरी नवाचार पर विचार करते हैं तो आमतौर पर निम्न छह स्वयंसिद्ध सिद्धांतों को पाते हैं:–

1. जटिलता को अपनाना और प्रबंधित करना।

प्रकृति की भांति शहरों मे भी विविधता सहज और तार्किक प्रणालियों तथा जैविक अंतर्संबंधों में संरचित होती है। परिवर्तन की आवश्यकता और संरक्षण की इच्छा के बीच एक आपसी खींचातानी है। विकास को स्थलाकृतियों की वहन क्षमता के भीतर रखते हुए बुनियादी ढांचे के हिस्से के रूप में प्राकृतिक प्रणालियों का उपयोग करके मनुष्य द्वारा प्रकृति को प्रभावित किए बिना इसकी गतिशील जटिलता का हिस्सा बनाया जा सकता है।

2. जनसंख्या और आर्थिक वृद्धि को संधारणीय बनाना।

किसी भी उत्तरदायी शहरी नीति के अंतर्गत जनसंख्या और आर्थिक वृद्धि को अपनाते हुए हमें भविष्य में अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए लोगों की क्षमता को कम किए बिना प्राकृतिक प्रणालियों को अस्थिर किए बिना उस वृद्धि को समायोजित करना होगा। जो स्थान पहले से ही शहरीकृत हैं लेकिन बदलती बाजार शक्तियों के कारण पीछे छूट गए हैं वहां पर सेवाओं और सुविधाओं का एक ऐसा बुनियादी ढाँचा है जो विकास को समायोजित कर सकता है जिसे व्यर्थ करने के बजाय पुनःउपयोग किया जाना चाहिए।

3. सभी प्रारूप/डिजाइन प्रक्रियाओं को अंतः विषयक बनाना

चूंकि इको डिजाइन का अर्थ कृत्रिम और प्राकृतिक वातावरण का एकीकरण है। अतः यह परिकल्पना हर प्रारूप प्रक्रिया को स्वाभाविक रूप से बहु–विषयक या अंतःविषयक बनाती है जिसमें यह विशेष विशेषज्ञता को स्वीकार करते हुए विशेषज्ञों के मध्य संयुक्त प्रारूप निर्माण के प्रयासों को भी बढ़ावा देती है जिससे मूल्यवान नवाचारों को बनाने के अवसर मिलते हैं।

4. सार्वजनिक भागीदारी की आवश्यकता

शहर के स्वरुप और विकास की प्रक्रिया में पहले अस्थायी वैचारिक विचारों से लेकर पूरी परियोजना तक व्यापक सार्वजनिक भागीदारी शामिल होनी चाहिए। यह उन तरीकों में से एक है जो प्रारूप प्रक्रिया विविधता को समायोजित करती है और हमें सब कुछ एक ही दिशा मे निर्देशित करने से रोकती है और इस तरह की प्रक्रिया पहले से ही मास्टर प्लान के लिए व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है।

5. प्राकृतिक और निर्मित दोनों संदर्भों का सम्मान करना

हम जिस प्राकृतिक और निर्मित परिवेश में प्रारूप तैयार करते है उसमें अखंडता होती है और जो पहले से मौजूद है उसमें भावनात्मक मूल्य और अंतर्निहित संसाधन और ऊर्जा होती हैं। निर्माताओं और प्राधिकारों को पर्यावरण और सामाजिक प्रणालियों की स्पष्ट वैचारिक और तकनीकी समझ के साथ शुरुआत करनी चाहिए। नष्ट करने और निपटाने से पहले संरक्षण, पुनरूपयोग और रिसाइकिल करना प्रथम विचार होना चाहिए।

6. विविध प्रारूप निर्माण विधियों को अपनाना

आधुनिक तकनीक हमें इमारतों और स्थानों को नया आकार देने के लिए आकर्षक नई संरचनात्मक सामग्री और तकनीकी संभावनाएँ प्रदान करती है। सिस्टम चेंकिग में प्रगति हमें उस जटिलता को समझने और प्रबंधित करने में सहायता कर सकती है जो इतनी महत्वपूर्ण है।

चार तात्कालिक/महत्वपूर्ण मुद्दे

चार तात्कालिक मुद्दे जिन्हें इको डिजाइन के छह सिद्धांतों के अनुसार हल करने की आवश्यकता है।

- जलवायु परिवर्तन: पर्यावरण हमेशा से एक गंभीर समस्या रही है। दिल्ली में भीषण गर्मी ने शहर की बिजली की मांग को रिकॉर्ड स्तर पर पहुंचा दिया है। शहरी आग के खतरे के बढ़ते मामलों में उचित अग्नि सुरक्षा बुनियादी ढांचे और जागरूकता की कमी के कारण जोखिम पैदा होता है। अपर्याप्त वर्षा जल निकासी व्यवस्था और प्राकृतिक जल निकायों पर अतिक्रमण के कारण मानसून के दौरान अक्सर शहरी बाढ़ आती है। भारत ने हाल के वर्षों में विशेष रूप से हैदराबाद, चेन्नई, बेंगलुरु, अहमदाबाद, दिल्ली के कुछ हिस्सों और नागपुर में भयंकर बाढ़ का सामना किया है।
- यातायात और आवागमन में बाधित चुनौतियां: तेजी से बढ़ते शहरीकरण और निजी वाहनों की आमद के कारण यातायात–गहनता बढ़ गई है जिससे आवागमन का समय बढ़ गया है और उत्पादकता में बाधा आ रही है। उदाहरण के तौर पर बेंगलुरु शहर।
- तीसरी समस्या शहरों और उपनगरों के स्वरुप को प्राकृतिक पर्यावरण के साथ अधिक अनुकूल बनाने, रहने और काम करने के रूप के अनुसार अधिक आकर्षक बनाने के तरीके ढूंढना है। कई भारतीय शहर तेजी से शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि और घटते भूजल स्तर के कारण अपर्याप्त ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, पानी की कमी और अपर्याप्त जल प्रबंधन का सामना करते हैं।
- सार्वजनिक क्षेत्र का डिजाइन और प्रबंधन भूमि उपयोग सिद्धांतों को अपनाते हुए सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों का प्रारूप तैयार करने और प्रबंधित करने की

आवश्यकता है। साइबर सुरक्षा और लचीले डिजिटल बुनियादी ढांचे की समस्या व उनका निर्माण एक महत्वपूर्ण विषय है।

सापेक्ष उपाय

स्थानीय और क्षेत्रीय प्रयास, साथ ही अपेक्षाकृत सरल उपाय, जिन्हें अपने समुदाय में अपना सकते हैं, जो जलवायु परिवर्तन उत्पन्न करने वाले कारकों को सीमित कर देंगे।

1. वैश्विक जलवायु और खाद्य आपूर्ति जोखिमों के अनुकूल शहरी विकास मॉडल को बदलना वैश्विक तापमान वृद्धि को सीमित करने के लिए वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत और शहरी एवं पर्यावरणीय सामंजस्य के लिए प्रोटोटाइप।

2. अच्छे परिवहन के अनेक लाभ प्राप्त करने के लिए परिवहनों के बीच संतुलन की आवश्यकता के साथ यातायात से संबंधित शून्य मृत्यु दर को कम करने, बेहतर सार्वजनिक परिवहन क्षमताएं जैसे कि बड़े क्षेत्रों के लिए हाई स्पीड रेल आदि सम्भावनायें मौजूद हैं।

3. शहरों को अधिक रहने योग्य और पर्यावरण अनुकूल बनाने के लिए अनुभवजन्य दृष्टिकोण की जरूरत है। विकास के नियम और "पड़ोस की शक्ति", सामाजिक और भवन विविधता, स्वस्थ पर्यावरण आदि को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

4. सार्वजनिक क्षेत्र का डिजाइन और प्रबंधन, जन केंद्रित सार्वजनिक स्थान, भूले हुए शहरी स्थानों को पुनः प्राप्त करना, शहरी स्थानों में प्राकृतिक वातावरण का पुनः निर्माण करना।

इको–डिजाइन को लागू करने के लिए हमें बड़े पैमाने के उद्देश्यों को अपनाना होगा, जैसे कि सार्वजनिक–निजी सहयोग, स्थानीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन का अनुकूलन और शमन, नियामक परिवर्तन और डिजाइन नियंत्रण, शहरी परिसंपत्तियों और विकासात्मक अधिकारों का लाभ उठाना।

******

विसादूरी (अगेरेटम कोनीजोइडस-एल): पर्यावरणीय स्थिरता और स्वास्थ्य में भूमिका

साक्षी ठाकुर, राकेश कुमार सिंह, रेनू लता
गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र मोहल, कुल्लू हिमाचल प्रदेश

परिचय

Ageratum conyzoides L-जिसे हिंदी में विसादूरी और अन्य स्थानीय नामों से जाना जाता है, एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है जो मूलतः दक्षिण और मध्य अमेरिका का निवासी है। आज यह एक व्यापक उष्णकटिबंधीय खरपतवार के रूप में पहचाना जाता है, जिसने एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका और यूरोप के समशीतोष्ण और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। एस्टरैसी परिवार का यह पौधा 30 से 90 सेंटीमीटर की ऊँचाई में उगता है, और इसके नीले, सफेद या बैंगनी फूल इसे विशिष्ट बनाते हैं। पारंपरिक चिकित्सा में इसके कई उपयोगों के कारण, इसे विभिन्न रोगों के उपचार में एक मूल्यवान संसाधन माना जाता है। इसकी औषधीय विशेषताएँ, जैसे एंटीऑक्सीडेंट, एंटीमाइक्रोबियल और एंटी-इंफ्लेमेटरी गुण, इसे वैज्ञानिक अनुसंधान में महत्वपूर्ण बनाते हैं।

विसादूरी (Ageratum conyzoidesL) की व्यापकता

मूल रूप से दक्षिण और मध्य अमेरिका का पौधा है, जो अब एक व्यापक उष्णकटिबंधीय खरपतवार के रूप में जाना जाता है। यह समशीतोष्ण और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में भी फैल गया है, जहां यह गर्मियों के दौरान सजावटी पौधे के रूप में उगता है। हालांकि इसके प्रारंभिक क्षेत्र के बारे में सटीक जानकारी नहीं है, माना जाता है कि इसका मूल क्षेत्र मध्य और दक्षिण अमेरिका के कुछ हिस्सों और वेस्टइंडीज तक फैला हुआ था। वर्तमान में, यह पौधा एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, मध्य अमेरिका, कैरिबियन, दक्षिण अमेरिका, यूरोप और ओशिनिया में भी पाया जाता है।

पौधे का परिचय

क्षेत्र	पादप
फाइलम	ट्रैकियोफाइटा
क्लास	मैगनोलियोरिपडा
ऑर्डर	एस्टेरलेस
परिवार	एस्टेरसिया
जीनस	एग्रेटम एल.
किस्म	एग्रेटम कोनिजोयेडिज एल.

स्थानीय नामः विसादूरी (हिंदी); नई तुलसी, मुगुथी गिडा (कन्नड़); वाडाइचेडी (तमिल); पोकसुंगा, बोकसुंगा, देंगसिगी (उड़िया); विसामुस्तिन (संस्कृत), ओसादी (मराठी), अप्पा, कट्टप्पा, कुम्मिनिपाचा, मुरियनपाचे, पोकसुंगा (मलयालम) गोवा वीड, अप्पा घास (अंग्रेजी)।

विसादूरी (अगेरेटम कोनीजोइडस–एल) के फूल, बीज और पत्ते

विसादूरी से प्राप्त एंटिफंगल यौगिकों का उपयोग मौजूदा फफूंदनाशकों के सुरक्षित और पर्यावरणीय रूप से अनुकूल विकल्पों के विकास में किया जा सकता है। यह सुगंधित जड़ी–बूटी पारंपरिक चिकित्सा में व्यापक रूप से उपयोग की जाती रही है। इसमें फ्लेवोनॉइड्स, एल्कलॉइड्स, टरपेनॉइड्स, कुमरिन्स और स्टेरोल्स सहित कई द्वितीयक मेटाबोलाइट्स पाए जाते है। इसके आवश्यक तेल में विभिन्न फाइटोकेमिकल्स जैसे बेंजोफ्यूरान्स, फ्लेवोनॉइड्स, एल्कलॉइड्स, स्टेरोल्स और टरपेनओइड होते हैं। इन यौगिकों को रेडियोधर्मी, एंटीडायबेटिक, एंटीमाइक्रोबियल, एंटी–इंफ्लेमेटरी, एंटीऑक्सीडेंट, एंटी–कैंसर और घाव भरने वाले जैसे और भी कई गुणों के लिए जाना जाता है।

विसादूरी के पारंपरिक उपयोग

विसादूरी को ऐतिहासिक रूप से दक्षिण अमेरिका, एशिया और अफ्रीका सहित दुनिया के कई क्षेत्रों में पारंपरिक औषधि के रूप में उपयोग किया जाता रहा है। पूरा पौधा एक तेज, शक्तिशाली गंध और विभिन्न प्रकार की जैविक गतिविधियों वाला तेल उत्पन्न करता है। इसे घावों पर लगाया जाता है, रेचक और ज्वरनाशक के रूप में उपयोग किया जाता है, और अल्सर, पेट का दर्द और विभिन्न प्रकार के त्वचा रोग के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है। जड़ी बूटी के काढ़े या आसव का उपयोग दस्त, पेचिश, आंतों का दर्द, पेट फूलना, गठिया से बुखार और स्त्री रोग संबंधी बीमारियों सहित जठरांत्र संबंधी विकारों के इलाज के लिए भी किया जाता है। यह पौधा भारत में पूयदृष्टि (पुरुलेंट ओप्थल्मिया) के लिए एक तेल लोशन के रूप में और कुष्ठ रोग के इलाज के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, मणिपुर, (भारत) में इसे पारंपरिक बाल उपचार बनाने के लिए उपयोग किया जाता है जो रूसी का इलाज करता है। यह पौधा सिरदर्द, सांस की तकलीफ (डिस्प्निया), मानसिक विकारों और संक्रामक बीमारियों के इलाज में उपयोग होता है। गर्भाशय से संबंधित समस्याओं के लिए, पानी में कुचले हुए पत्तों को योनि में लगाया जाता है। इसे वमनकारी (उल्टी लाने वाला) रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह जड़ी–बूटी मध्य अफ्रीका में जलने के घावों के इलाज के लिए उपयोग की

जाती है, और इसे शांतिदायक (एंटीस्पास्मोडिक), अस्थमा के इलाज के लिए और ऐतिहासिक रूप से रक्तस्राव को रोकने (हीमास्टैटिक) के प्रभावों के लिए उपयोग किया जाता है। ब्राजील में, इस पौधे की पत्तियों का उपयोग अतिसार (डायरिया) रोधी, दर्द निवारक (एनाल्जेसिक), और सूजनरोधी (एंटी–इंफ्लेमेटरी) के रूप में किया जाता है। इसके अलावा, इस जड़ी–बूटी का विशेष रूप से वियतनाम में स्त्री रोग संबंधी बीमारियों के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है।

कृषि स्थिरता में विसादूरी का योगदान

विसादूरी को कृषि में शामिल करने से स्थायी कृषि प्रथाओं को प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि यह एक बहुपरोपकारी पौधा है जो कई तरीकों से कृषि प्रणाली का समर्थन करता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण उपयोग प्राकृतिक कीट नियंत्रण के लिए किया जा सकता है, क्योंकि इसकी गंध कई कीटों को दूर करती है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम होती है। इसके अलावा, इसे मिश्रित फसल प्रणाली में शामिल करके फसल विविधता को बढ़ावा दिया जा सकता है, जिससे अन्य फसलों को पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग मिलता है। विसादूरी के पत्ते जैविक खाद के रूप में काम करके मिट्टी की उर्वरता बढ़ाते हैं, जबकि इसके फूल परागकाय जीवों को आकर्षित करके प्राकृतिक परागण में सहायता करते हैं। इसके प्राकृतिक गुण इसे जलवायु परिवर्तन और कीटों के हमलों के प्रति सहिष्णु बनाते हैं, जिससे किसान दीर्घकालिक कृषि प्रथाओं को अपनाकर स्थायी विकास की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। इस प्रकार, विसादूरी एक स्वस्थ और संतुलित कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

निष्कर्ष और भविष्य की संभावनाएँ

विसादूरी का औषधीय महत्व आधुनिक अनुसंधान में तेजी से बढ़ रहा है। इसके सक्रिय यौगिकों की संरचना और उनकी जैविक गतिविधियों का अध्ययन करने के लिए अधिक वैज्ञानिक प्रयास हो रहे हैं। इसके एंटी–इंफ्लेमेटरी और एंटीऑक्सीडेंट गुणों के कारण, यह विभिन्न चिकित्सीय अनुप्रयोगों के लिए एक संभावित स्रोत बन गया है। इसके अलावा, विसादूरी का उपयोग पर्यावरणीय स्वास्थ्य के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके प्राकृतिक यौगिकों का प्रयोग मौजूदा फफूंदनाशकों के सुरक्षित विकल्प के रूप में किया जा सकता है। इस पौधे की औषधीय उपयोगिता को समझने के लिए अधिक फाइटोकैमिकल और फार्माकोलॉजिकल अध्ययन आवश्यक है। भविष्य में, इसका उपयोग न केवल पारंपरिक चिकित्सा में, बल्कि औषधीय विकास और बायोटेक्नोलॉजी में भी किया जा सकता है। एथनोफार्माकोलॉजी के संदर्भ में, विसादूरी एक महत्वपूर्ण अनुसंधान विषय है, जो इसके संभावित लाभों की खोज में योगदान दे सकता है। इसके व्यापक औषधीय गुण और पारंपरिक उपयोग इसे वैश्विक स्वास्थ्य में एक मूल्यवान संसाधन बनाते हैं।

*****

ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्कः विश्व धरोहर और जैव विविधता का एक अद्भुत संगम

सुमति राठौर एवं राकेश कुमार सिंह
गोविन्द बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मौहल–कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

भूमिका

ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क जी.एच.एन.पी. हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले में स्थित है, जिसकी भौगोलिक स्थिति 31°38'28''–31°51'58'' उत्तर अक्षांश और 77°20'11''– 77°45'52' पूर्व देशांतर के बीच है। यह पार्क सैंजवाइल्ड लाइफ सेंचुरी, तीर्थन वाइल्ड लाइफ सेंचुरी और इकोडेवलपमेंट जोन के साथ मिलकर ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क कंजर्वेशन एरिया; (जी.एच.एन.पी.सी.ए.) का निर्माण करता है। यहा की ऊँचाई 1344 मीटर से लेकर 6205 मीटर समुद्र तल से ऊपर तक फैली हुई है। यह पार्क वर्ष 1984 में स्थापित किया गया था और वर्ष 1999 में इसे राष्ट्रीय पार्क का दर्जा दिया गया। जून 2014 में ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क को जैव विविधता संरक्षण के लिए उत्कृष्ट महत्व के मानदंड के तहत यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थलों की सूची मे शामिल किया गया था। यह पार्क कुल्लू जिले के पश्चिमी भाग में स्थित है और अपनी जैव विविधता के लिए प्रसिद्ध है। हिमालयन नेशनल पार्क में 25 से अधिक प्रकार के वन, 800 प्रकार के पौधे और जीव–जंतुओं की 381 से अधिक प्रजातियां पायी जाती हैं, जिनमें लगभग 32 स्तनधारी, 180 पक्षी, 3 सरीसृप, 10 उभयचर, 12 एनेलिड, 18 मोलस्क और 126 कीड़े शामिल हैं।

ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क

जैव विविधता और वन्यजीव

620 वर्ग किलोमीटर में फैला यह राष्ट्रीय पार्क हिमालय के भूरे भालू का आवास है और यहां समशीतोष्ण तथा एलपाइन वन पाए जाते हैं। पार्क में वर्जिन कोनीफेरस वन, एलपाइन चरागाह और ग्लेशियर का एक बड़ा क्षेत्र शामिल है। यहां मस्क डियर, ब्राउन बीयर, गोरल, हिमालयन थार, चीतल, बर्फानी चीतल, भराल, मोनल, वेस्टर्न ट्रागोपान और बर्फानी कौआ जैसी महत्वपूर्ण वन्य प्रजातियाँ देखी जा सकती हैं। पार्क में पर्यटकों के लिए रक्तिसार की चढ़ाई, सैंज नदी का उद्‌गम और एलपाइन चरागाहों में कैम्पिंग जैसे अनुभव अविस्मरणीय होते हैं। तीर्थन नदी के उद्‌गम स्थल तक पहुंचने का मार्ग भी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है।

वेस्टर्न ट्रागोपान

हिमालयन थार

प्राकृतिक और सांस्कृतिक महत्व

कुल्लू घाटी में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा काफी पुरानी है। घाटी के कई स्थानों के नाम संतो के नाम पर हैं जिन्होंने यहां साधना की। आज भी कई अभयारण्यों को उपवन के रूप में संरक्षित रखा गया है। ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क संरक्षण क्षेत्र में सैंज और तीर्थन वन्यजीव अभयारण्य शामिल हैं। इस क्षेत्र में 905.40 वर्ग किलोमीटर का विस्तार है। जिसमें ऊपरी ग्लेशियर, जैवानल, सैंज तथा तीर्थन नदियों का उद्‌गम स्थल, और साथ में पार्वती नदी का जलस्रोत भी शामिल है।

विश्व धरोहर का दर्जा

जून, 2014 में ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क को विश्व धरोहर का दर्जा प्राप्त हुआ। यह हिमाचल प्रदेश का पहला पार्क है जिसे इस सम्मान से नवाजा गया। इस मान्यता के बाद पार्क में पर्यटन गतिविधियों में वृद्धि हुई है और वन्य प्राणियों, पक्षियों और जड़ी–बूटियों के संरक्षण को बढ़ावा मिला है। पार्क क्षेत्र में पर्यटकों की आवाजाही प्रतिवर्ष बढ़ ही रही है। यहां लगभग 500 जाजुराना पक्षियों का संरक्षण किया जा रहा है। इसके अलावा कस्तूरी मृग और बर्फानी तेंदुआ भी इस क्षेत्र में निवास करते हैं।

सामाजिक–आर्थिक संदर्भ

ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क को अगर हम सामाजिक–आर्थिक दृष्टि के संदर्भ में देखें तो यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पार्क की पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी सीमाओं पर कई बस्तियाँ स्थित हैं, जिनकी अर्थव्यवस्था मुख्यतः वन, कृषि और पशुपालन पर आधारित है। स्थानीय

लोग अपने खेतों में पारंपरिक कृषि द्वारा फसलें उगाते हैं। इसके साथ ही वे जड़ी बूटियों, बांस और अन्य वन उत्पादों का संग्रह भी करते हैं, जो उनकी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। पार्क की यात्रा के लिए सबसे अच्छा समय अप्रैल, मई, जून, अक्टूबर और नवंबर है। जुलाई और अगस्त का महीना मानसून वाला होता है। इस बीच में यात्रा करना खतरनाक होता है। ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क संरक्षण क्षेत्र का एक प्रमुख लक्ष्य जैविक संसाधनों से नई आर्थिक संभावनाओं का विकास करना है जो भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने के साथ–साथ स्थानीय समुदायों के लिए वैकल्पिक आजीविका के स्रोत प्रदान करता है। यह नवोन्मेषी रणनीति प्राकृतिक संसाधनों का आधार है जिसमें पार्क का इकोजोन भी शामिल है और स्थानीय समुदायों की तत्काल और दीर्घकालिक आजीविका की आवश्यकताओं के बीच संबंध में बदलाव लाने पर केंद्रित है।

प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता

इस क्षेत्र के लोग ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क और आस–पास के वन क्षेत्रों के संसाधनों पर निर्भर है। जड़ी बूटियों का संग्रह एक प्रमुख गतिविधि है जिसमें 24 से अधिक औषधीय पौधों का पारंपरिक उपयोग किया जाता है। इसके अलावा स्थानीय लोग बांस और अन्य वन उत्पादों का उपयोग करके विभिन्न वस्तुएं बनाते हैं जैसे कि टोकरियाँ, रस्सियाँ, और चटाइयाँ इत्यादि।

निष्कर्ष

ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क न केवल जैव विविधता का अद्वितीय उदाहरण है, बल्कि यह एक सामाजिक–आर्थिक संदर्भ भी प्रस्तुत करता है, जहां स्थानीय समुदायों की जीवनशैली और पारिस्थितिकी का आपस में गहरा संबंध है। इसके संरक्षण और प्रबंधन के लिए सतत प्रयासों की आवश्यकता है ताकि आने वाली पीढ़ियों को इस क्षेत्र की समृद्धि और विविधता का अनुभव हो सके।

*****

हिमाचल प्रदेश की लाहौल घाटी की मूल्यवान जैव विविधता

शिव पाल एवं स्वर्ण लता
भा०वा०अ०शि०प० – हिमालयन वन अनुसधान संस्थान,
कॉनिफर परिसर, पंथाघाटी
शिमला, हिमाचल प्रदेश

लाहौल घाटी, भारत के ट्रांस हिमालय क्षेत्र की जैविक एवं सांस्कृतिक संपदा के क्षेत्र में अद्वितीय मानी जाती है। 'लाहौल' शब्द संभवत: दो तिब्बती शब्दों 'लाह और यूल– से बना है, जिसका अर्थ है ''देवताओं की भूमि''। इसे ''ग्लेशियरों की घाटी'' भी कहा जाता है। लाहौल घाटी 32.0921° से 33. 2557° उत्तर अक्षांश और 76.3583° से 77.7991° पूर्व देशांतर के बीच हिमाचल प्रदेश के लाहौल एवं स्पीति जिले में स्थित है। घाटी की सबसे ऊंची पर्वत चोटी मुलकिला (6,517 मीटर) है और सबसे निचला बिंदु कडू नाला (2400 मीटर) है जो पांगी घाटी में चिनाब नदी का प्रवेश द्वार है। घाटी में ऊंचे पहाड़ वर्ष भर बर्फ से ढके रहते हैं। घाटी की विशिष्ट विशेषताएं बर्फ से ढकी चोटियाँ, विशाल ग्लेशियर, अद्वितीय जैव विविधता, ऊँची पर्वत श्रृंखलाएँ और संकीर्ण नदी घाटियाँ हैं।

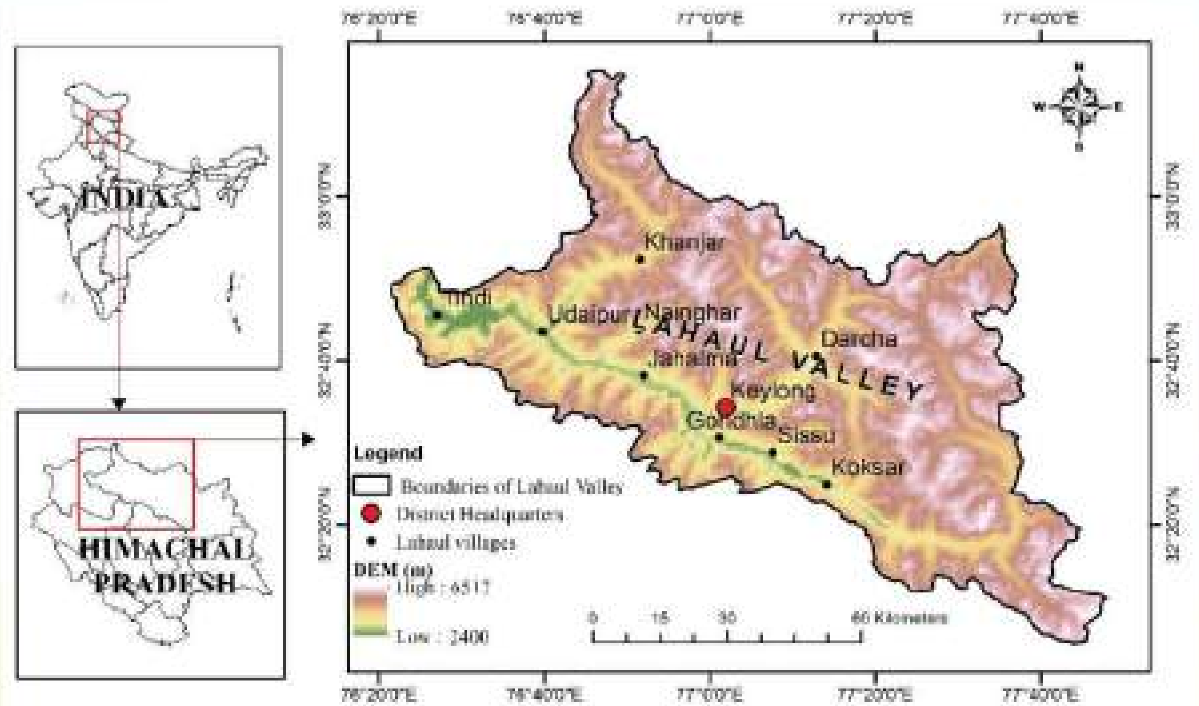

लाहौल घाटी की वनस्पति में मुख्य रूप से शुष्क शीतोष्ण, उप–अल्पाइन और अल्पाइन प्रकार शामिल हैं। लाहौल घाटी वनस्पति विविधता की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। घाटी में लगभग 700 संवहनी पादप प्रजातियाँ पायी जाती हैं और इनमें से लगभग 250 प्रजातियां दुर्लभ, लुप्तप्राय और खतरे की स्थिति में हैं। भोजपत्र (बेटुला यूटीलिस), जुनिपर (शूर), काइल (पाइनसवाली चियाना), विल्लो (वेली), देवदार (सिडरस देओदारा), रई (पाईसिया समिथियाना), तोश (ऐबीस सपेकटेबिलिस), रखाल (टैक्सस वालिचियाना), जंगली सेब (मालस बकाता), इत्यादि इस क्षेत्र की प्रमुख वृक्ष प्रजातियाँ हैं। जबकि जंगली गुलाब (रोज़ा वेबबियाना), छरमा (सीबुक्क्थोर्न), कशमल (बिरबेरिस प्रजातियाँ), कॉटनएस्टर और लोनीसेरा की प्रजातियाँ प्रमुख झाड़ियाँ हैं। काला जीरा (ब्यूनियम पर्सिकम), पतीश (एकोनिटम हेटरोफिलम), सलमपंजा (डैक्टिलोरिजा हतागिरिया), कुटकी / कडु (पिक्रोरिजा कुर्रूआ), वन ककड़ी (पोडोफाइलम हेक्सांड्रम), रत्तंजोत (अर्नेबिया यूक्रोमा), गूगल धूप (ज्यूरिनिया मैक्रोसेफला), रेवंदचीनी (रयूम ऑस्ट्रेल), चोरा (एंजेलिका ग्लौका), जुंगली हींग (फेरूला जेशकीना), लीलिउम पोल्यफ्य्ल्लुम, हिमालयी ब्लू पोप्पी (मेकोनोप्सिस अकुलेयता), कुठ (सौसुरिया कॉस्टस) आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण औषधीय और संकटग्रस्त पौधे हैं। गुच्छी (मोर्चेला एस्कुलेंटा), कॉमन डौंग कप (पेजिजा वासिकुलोसा), जुंगली मशरूम (प्लुरोटस हिमालयेन्सिस) एवं बोविस्टा की प्रजाति कुछ महत्वपूर्ण जंगली खाद्य कवक प्रजातियाँ है।

लाहौल घाटी में पाए जाने वाले वन के प्रकार : 1) भोजपत्र एवं काइल के जंगल. 2) जुनिपर के जंगल. 3–4) शंकुधारी देवदार, काइल और जुनिपर के जंगल

लाहौल घाटी में पाए जाने वाले कुछ औषधीय और संकटग्रस्त पौधे:1) सलमपंजा,2) रेवंदचीनी,3) कुटकी / कड्डु, एवं 4) मेकोनोप्सिस अकुलेयता

लाहौल घाटी में पाए जाने वाले कुछ जंगली खाद्य पौधे: 1) मालसबकाता, 2) जंगलीगुलाब, 3) गुच्छी, 4) शिंगुजीरा

लाहौल घाटी में लगभग 20 स्तनधारी जंगली जानवर पाए जाते हैं। हिम तेंदुआ (थर), हिमालयी भूरा भालू (ओमो), हिमालय तहर (कर्थ), कस्तूरी मृग, तिब्बती भेड़िया (शंखु), हिमालयन आइबेक्स (दन), लाल लोमड़ी (ग्वाह), हिमालयन मर्मोट, पीले गले वाला मार्टन (कोगर), पहाड़ी नेवला, उड़ने वाली गिलहरी, हिमालयन ग्रे लंगूर (गोडिया), पिका (बॉट्टू), इत्यादि, कुछ प्रमुख स्तनधारी जंगली जानवर हैं। चुकोर, हिमालयन स्नो कॉक, हूपू (यूरेशियाई हूपोए), रेड बिल्ड चॉफ, भारतीय तालाब–बगुला, पहाड़ी कबूतर, गुगी, हिमालयी गिद्ध, गोल्डन ईगल (बाज), काला कौआ, उल्लू, इत्यादि घाटी में पाए जाने वाली प्रमुख पक्षी प्रजातियाँ हैं।

लाहौल घाटी में पाए जाने वाले कुछ जंगली जानवर: 1) हिम तेंदुआ, 2) हिमालयी भूरा भालू, 3) हिमालय तहर, एवं 4) हिमालयन आइबेक्स

लाहौल घाटी में पाए जाने वाली कुछ पक्षी प्रजातियाँ: 1) लंबी पूंछ वाला मिनीवेट, 2) हिमालयन स्नो कॉक, 3) यूरेशियाई हूपोए, एवं 4) पहाड़ी कबूतर

बीते कुछ सालों में रोहतांग अटल टनल के निर्माण के पश्चात इस क्षेत्र में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। पर्यटन में तेजी से बढ़ोतरी हुई है, जिसके कारण घाटी की समृद्ध जैव विविधता को कई मानव निर्मित व्यवधानों का सामना करना पड़ता है। इसमें यातायात एवं होटल सेवाओं का विस्तार, पर्यटन का दबाव, आवासीय विकास आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन का भी असर घाटी की प्राकृतिक वनस्पति पर पड़ रहा है। कीटों के हमले के कारण विलो और जुनिपर के पेड़ सूख रहे हैं। जलवायु परिवर्तन और मानव निर्मित दबावों ने लाहौल घाटी के संवेदनशील पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। इसलिए, लाहौल घाटी की समृद्ध जैव विविधता के संरक्षण के लिए स्थानीय निवासियों, वन विभाग तथा सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों की सक्रिय भागीदारी के साथ प्रभावी प्रबंधन योजनाएं विकसित करने की आवश्यकता है।

*****

हिमाचल प्रदेश में वायु प्रदूषक और बादल फटने की घटनाएंः एक समीक्षा

ईशा ठाकुर, केसर चंद एवं रेनू लता

गोविन्द बल्लभ पन्त राष्ट्रीय हिमालय

पर्यावरण संस्थान, हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र,

मौहल, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

परिचय

हिमाचल प्रदेश विश्वभर मे अपने प्राकृतिक सौन्दर्य और पारिस्थितिकीय विविधता के लिए प्रसिद्ध है। हिमाचल प्रदेश एक पहाडी राज्य है। पिछले कुछ दशकों से इस राज्य में बादल फटने की घटनाओं में वृद्धि देखी गई है और वायु प्रदूषण में भी वृद्धि देखी गई है। बादल फटने और वायु प्रदूषण का गहरा संबंध है और इनका संबंध एवं इनसे जुड़ी चुनौतियों पर अध्ययन करने के लिए देश व विदेश मे विभिन्न शोध कार्य चल रहे है। यह लेख हिमाचल प्रदेश में वायु प्रदूषकों और बादल फटने की घटनाओं की समीक्षा करता है।

वायु प्रदूषण के स्रोत एवं वायु प्रदूषण के प्रभाव

हिमाचल प्रदेश में वायु प्रदूषण के प्रमुख स्त्रोत वाहन से उत्सर्जित गैस, पर्यटन का बढ़ना, औद्योगिकीकरण, निर्माण कार्य, ईंधन जलाना हैं। भारतीय हिमालयन क्षेत्रों की वायुमंडलीय पारिस्थितिकी अतिसंवेदनशील होती है, और यहां वायु प्रदूषक जैसे कि नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, कार्बन डाइ ऑक्साइड और पार्टिकुलेट मेटर 10 और पार्टिकुलेट मेटर 2.5 उच्च स्तर पर्यावरण और स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालते हैं (वर्मा एटअल., 2015)। कुल्लू, शिमला और धर्मशाला जो की हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध पर्यटन स्थल हैं इन पर्यटन स्थलो में वाहन उत्सर्जन की वजह से वायु प्रदूषकों की सांद्रता में वृद्धि हुई है, जिससे स्थानीय वायु गुणवत्ता में गिरावट आई है (शर्मा एट अल., 2018)। इन प्रदूषकों के कारण न केवल श्वसन समस्याएं बढ़ रही हैं, बल्कि यह हिमालय की बर्फबारी के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं (सिंह एट अल., 2019)।

बादल फटने की घटनाओं में वृद्धि होना

मौसमीय घटना जिसमें एक छोटे क्षेत्र में बहुत कम समय के भीतर अत्यधिक भारी वर्षा हो जाए बादल फटना कहलाती है। कुल्लू, किन्नौर, चंबा, और लाहौल जैसे हिमाचल प्रदेश के कई क्षेत्रों में बादल फटने की घटनायें हर वर्ष बढ़ रही हैं। जो कि विशेष रूप से वर्षा ऋतु के समय होती हैं और जिस कारण अचानक अत्यधिक वर्षा से बाढ़ और भूस्खलन जैसी स्थिति उत्पन्न होती है (कुमार और ठाकुर, 2021)। जलवायु परिवर्तन और वायु प्रदूषण की बढ़ोतरी के कारण भी बादल फटने की घटनाओ मे बढ़ोतरी हो सकती है। वायुमंडल में घुले प्रदूषक और बढ़ते तापमान बादल बनने की प्रक्रिया को प्रभावित कर रहे हैं (राणा एटअल., 2020) जिसका परिणाम अत्यधिक वर्षा के रूप में सामने आ रहा है। बादल फटने की घटनाओं से राज्य के नाजुक पारिस्थितिकी तंत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है जिससे न केवल जनहानि हो रही है, बल्कि जल संसाधनों और खेती पर भी बुरा असर पड रहा है।

वायु प्रदूषक और बादल फटना एक अंतर्संबंध

वायु प्रदूषण बादल फटने की घटनाओं में अप्रत्यक्ष भूमिका निभा सकता है जिससे बादल बनने व उनकी संरचना मे बदलाव देखा गया है जिससे बादलों में पानी की वृद्धि होती है। (चौहान एट अल, 2019) वायु प्रदूषण के कारण बादल फटने की घटनायें और भी गंभीर हो सकती हैं। यह भी देखा गया है कि वायु प्रदूषण से हिमालयी ग्लेशियरों के पिघलने की दर में वृद्धि हो रही है जिससे इन क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और बढ़ जाते हैं। नतीजतन, बादल फटने जैसी घटनाएं और अधिक घातक हो जाती हैं (चौहान एट अल., 2019)।

निष्कर्ष

हिमाचल प्रदेश में वायु प्रदूषण और बादल फटने की घटनाओं के बीच एक स्पष्ट संबंध पाया गया है। जहा एक ओर वायु प्रदूषक पर्यावरण और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं, वहीं दूसरी ओर बादल फटने की घटनाएं जीवन और संपत्ति के लिए गंभीर खतरा बन रही हैं। वायु प्रदूषण की समस्या से निपटने के लिए सरकार और समाज को मिलकर काम करना होगा। साथ ही, जलवायु परिवर्तन और वायु प्रदूषण के प्रभावों को कम करने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

******

प्रदूषण एक वैश्विक चुनौती, समाधान एवं वैश्विक प्रयास

डिम्पल कुमारी एवं राकेश कुमार सिंह
गोबिन्द बल्लभ पंत, राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
मौहल, कुल्लू, हि.प्र.

हमारी पृथ्वी, जो कभी जीवन से भरपूर एक प्राचीन नखलिस्तान थी, अब एक बढ़ते खतरे का सामना कर रही है वह है प्रदूषण। यह घातक खतरा कई रूपों में हमारी हवा, पानी, और पोषक मिट्टी में व्याप्त है। प्रदूषण, भौगोलिक सीमाओं को पार कर हमारी नदियों को प्रदूषित करने वाले औद्योगिक कचरे से लेकर वायुमंडल को गर्म करने वाली ग्रीनहाउस गैसों तक, वास्तव में विश्वव्यापी चिंता का विषय बन गया है।

वायु प्रदूषण सबसे बड़े खतरों में से एक है और इसे साइलेंट किलर भी कहा जाता है। दुनिया में निन्यानवे प्रतिशत लोग उन जगहों पर रहते हैं जहाँ की हवा अस्वस्थ मानी जाती है (डबल्यूएचओ)। अमेरिकन लंग एसोसिएशन ने अपनी वार्षिक 'स्टेट ऑफ द एयर' रिपोर्ट में कहा है कि जलवायु परिवर्तन से वायु प्रदूषण की स्थिति बिगड़ रही है। 131 मिलियन अमेरिकी अस्वास्थ्यकर हवा में सांस ले रहे हैं। विश्व वायु गुणवत्ता रिपोर्ट 2023 के अनुसार, भारत वर्ष 2023 में शीर्ष रैंकिंग वाले बांग्लादेश और पाकिस्तान के ठीक बाद विश्व स्तर पर तीसरा सबसे प्रदूषित देश था।

पानी जिसे 'सार्वभौमिक विलायक'' के रूप में जाना जाता है, प्रदूषण के प्रति विशिष्ट रूप से संवेदनशील है। कृषि क्षेत्र न केवल वैश्विक मीठे पानी के संसाधनों का सबसे बड़ा उपभोक्ता है, जिसमें खेती और पशुधन उत्पादन पृथ्वी की सतह के पानी की आपूर्ति का लगभग 70 प्रतिशत उपयोग करते हैं, बल्कि यह एक गंभीर जल प्रदूषक भी है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, दुनिया का 80 प्रतिशत से अधिक अपशिष्ट जल उपचारित या पुनः उपयोग किए बिना पर्यावरण में वापस प्रवाहित हो जाता है। कुछ अल्प–विकसित देशों में यह आंकड़ा 95 प्रतिशत से भी ऊपर है। प्रदूषित जल स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालता है। द लैंसेट में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, 2015 में इसके कारण 108 मिलियन मौतें हुई। हर साल, असुरक्षित पानी लगभग 1 अरब लोगों को बीमार करता है।

अध्ययनों से पता चला है कि अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र के अपशिष्टों के माध्यम से प्रतिदिन लगभग 7 मिलियन माइक्रोप्लास्टिक वस्तुएं जलीय स्रोतों में छोड़ी जाती हैं, जिस कारण माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण के वैश्विक साझेदार है। ये वैश्विक समाचार पत्रिकाओं की चिंताजनक सुर्खियाँ हैं। प्रदूषण राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर हमारे समय की एक निर्णायक चुनौती बन गया है। पृथ्वी का कोई भी कोना अछूता नहीं है, यह एशिया के स्मॉग से भरे महानगरों से लेकर हमारे महासागरों में घूमती प्लास्टिक से भरी गाइयाँ तक फैला है।

दुनिया मे सबसे तेजी से बढ़ते ठोस अपशिष्ट इलेक्ट्रॉनिक कचरा या "ई.कचरा" हैं, जो वैश्विक आबादी की तुलना में तीन गुना तेजी से बढ़ रहें हैं। वर्ष 2019 में विश्व भर में अनुमानित 53.6 मिलियन टन ई.कचरे में से केवल 17.4 प्रतिशत को एकत्र और पुनर्नवीनीकरण किया गया था। ई.कचरे के पुनर्चक्रण से लोगों का स्वास्थ्य खराब हो सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमानों के अनुसार, वैश्विक स्तर पर अनौपचारिक रीसाइक्लिंग क्षेत्र में कार्यरत लाखों महिलाएं और बाल श्रमिक ई.कचरे से प्रभावित हो सकते हैं।

वैश्विक समस्या का वैश्विक समाधान

जल प्रदूषण के कारण हमारा स्वास्थ्य खतरे में है। युद्ध और अन्य सभी प्रकार की हिंसाओं को मिलाकर जितने लोग मारे जाते हैं, उससे अधिक लोग प्रतिवर्ष असुरक्षित जल के कारण मारे जाते हैं। चूंकि पृथ्वी पर 1 प्रतिशत से भी कम ताजा पानी वास्तव में मनुष्यों के लिए उपलब्ध है, इसलिए यह जरूरी है कि हमारे पास जो कुछ भी है उसे हम संरक्षित करें, खासकर तब जब मीठे पानी की मांग वर्ष 2050 तक एक तिहाई बढ़ने का अनुमान है। सतत विकास लक्ष्य 6 सभी के लिए पानी और स्वच्छता तक पहुंच सुनिश्चित करना, जल संसाधनों के न्यायिक उपयोग के बारे में नागरिकों के बीच जागरूकता पैदा करके हासिल किया जा सकता है। माइक्रोप्लास्टिक्स और नैनोप्लास्टिक्स संबंधी चिंताओं के समाधान के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें इसके स्रोत पर प्लास्टिक कचरे को कम करना, अपशिष्ट प्रबंधन प्रथाओं में सुधार करना और पर्यावरण से माइक्रोप्लास्टिक्स को हटाने के लिए अभिनव समाधान ढूंढना शामिल है। इसी तर्ज पर अगस्त, 2021 में, भारत ने प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन नियम, 2016 में संशोधन के माध्यम से 19 एकल–उपयोग प्लास्टिक (एसयूपी) वस्तुओं पर प्रतिबंध लगा दिया। देश में पहली बार इन चयनित वस्तुओं को "एकल उपयोग वाली प्लास्टिक वस्तुओं" के रूप में भी परिभाषित किया गया। इसके साथ ही भारत उन 170 से अधिक देशों की सूची में शामिल हो गया है जो पहले से ही ऐसी वस्तुओं पर प्रतिबंध लगा चुके हैं।

खतरनाक ई.कचरा रीसाइक्लिंग कार्यों के दौरान समुदायों की सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों तरह की कार्रवाई की आवश्यकता है। ऐसी कई चीजें हैं जो की जा सकती हैं, जैसे उच्च स्तरीय अंतरराष्ट्रीय समझौतों को लागू करना और अपनाना, अपने देश में पर्यावरण और सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले कानून बनाना और लागू करना, ई.कचरा साइटों और उनके आस–पास के समुदायों की निगरानी करना, कार्यान्वयन करना और लागू करना। ऐसे हस्तक्षेपों की निगरानी करना जो अनौपचारिक ई.कचरा रीसाइक्लिंग प्रयासों को बढ़ाते हैं, सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं, और समुदाय के लिए आय के आवश्यक स्रोतों को बनाए रखते हैं, ई.कचरे से संबंधित बाल स्वास्थ्य मुद्दों के बारे में सभी स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल पेशेवरों को प्रशिक्षित करते हैं और बाल श्रम को गैरकानूनी मानते हैं।

कोई भी कार्य जो प्रदूषण को कम करता है, खत्म करता है, या प्रदूषण को उसके होने से पहले ही उसके स्रोत पर ही रोक देता है, प्रदूषण रोकथाम के रूप में जाना जाता है। प्रदूषण, जो स्वास्थ्य समस्याओं का मुख्य कारण है, से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, आईपीसीसी जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को स्थायी समाधान करना चाहिए। विश्व नेताओं को इस बड़ी चुनौती का सामना करने के लिए पेरिस समझौता, क्योटो प्रोटोकॉल, कार्बन तटस्थ लक्ष्य, कार्बन व्यापार, हरित और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों पर स्विच करने आदि पर सहमत होना आवश्यक है।

*****

उत्तर–पूर्वी भारत से नोलिड शलभों (शल्कपंखी) की विविधता

राहुल जोशी एवं नवनीत सिंह

भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, एम ब्लॉक,
न्यू अलीपुर, कोलकाता

पृथ्वी पर कितनी जातियाँ/प्रजातियाँ निवास करती हैं, इसकी खोज और वर्णन करना जीव विज्ञान के लिए एक मौलिक खोज बनी हुई है, वह भी तब, जब हम वर्गीकरण के इतिहास में ''वर्गानुवंशिकी (फाइलोजेनोमिक) युग'' में प्रवेश कर रहे हैं। आक्रामक प्रजातियाँ, जलवायु परिवर्तन, पर्यावासों का विनाश और विशेष रूप से जैव विविधता के नुकसान जैसे कई महत्वपूर्ण मुद्दे हमारे सामने हैं, अतः आधिकारिक वर्गीकरण एवं जैव विविधता संबंधी जानकारी की आवश्यकता अभी और भी अधिक है। वर्गीकरण विज्ञान का मूल उदेश्य पृथ्वी प्रजातियों की खोज और उसका वर्णन करना है, प्रजातियों को उनके संबंधों के अनुसार वर्गीकृत कर उनके बारे में जो कुछ ज्ञात है उसे नामों के माध्यम से लोगों तक पहुँचाया जाये। दुर्भाग्य से, अभी तक का वर्गीकरण ज्ञान प्रजाति पूर्ण होने से कोसों दूर है क्योंकि पृथ्वी पर प्रजातियों की संख्या अनुमानत 8.7 मिलियन है जिनमें से केवल 1.75 मिलियन ही हमें ज्ञात हैं और इनमें से 87% अभी भी खोजी जानी बाकी हैं। सम्पूर्ण विश्व के वर्णित जीव–जंतुओं में से, कीडों की 10,70,781 प्रजातियां बताई गई है जो कि अब तक की सबसे सफल गिनती की गई प्रजातियों का समूह है। कीड़ों के वर्गीकरण में ही एक समूह ऐसा भी है जिन्हें "शल्कपंखी"/लेपिदोप्तेरा कहा जाता है जिसकी विश्व स्तर पर शलभों की 1,66,320 प्रजातियां हैं जिनमें से 13,124 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं और इन्हीं में एक परिवार के सदस्यों को "नोलिडी शलभ" का नाम दिया गया है।

कुल नोलिडी–एक परिचय

नोलिडी शलभ, जिसे आमतौर पर 'टफ्ट मॉथ या टफ्ट पतंगे" कहा जाता है (चित्र –1,2), क्वाड्रिफिड नॉक्टुओइड्स के प्रमुख कीट समूहों में से एक है जिसमें आठ उपकुल शामिल हैं: बेअनिनि, क्लोएफोरिनि, कोलोमेनिनि, डिप्थीरिनि, एलिग्मिनिनि, नोलिइनि, रिसोबिनि एवं वेस्टरमैनिनि। जिनमें से कोलोमेनिनि और डिप्थीरिनि भौगोलिक रूप से नव–उष्णकटिबंधीय (नियो–ट्रॉपिक्स) तक ही सीमित हैं। नोलिडी परिवार अंटार्कटिका को छोडकर दुनिया भर में पाया जाता है और यह 202 वंशो (जेनेरा) के तहत 2,179 प्रजातियों की अनुमानित संख्या से जाना जाता है। भारत से 98 वंशो (जेनेरा) के तहत प्रजातियों की संख्या 356 है।

नोलिडी की पहचान विशिष्ताएं

- नोलिडी की पहचान अग्र पंख की लम्बी संशोधित रेटिनकुलम की उपस्थिति से होती है (चित्र –3)।
- पोस्ट स्पाइरकुलर काउंटर–टिम्पैनल हुड की उपस्थिति।
- अधिकांश नॉलिड के अग्र पंख का कोस्टल क्षेत्र (कोस्टल और सबकोस्टल शिराओ के बीच) बड़ा एवं विस्तारित होता है।

- शिरा एम2, एम3 के साथ या करीब, ताकि शिराओं की चौकड़ी (एम2, एम3, सीयूए1, सीयूए2) की उत्पत्ति एक समान हो।
- एक असामान्य थैलीदार निकला हुआ किनारा या ढाल जैसी संरचना वाला नर जननांग, संभवतः जक्सटा को शामिल करता है, जो ट्रास्टिला के पृष्ठीय समर्थन का विरोध करते हुए, एडिएगस को वेंट्रल रूप से समर्थन देता है।
- ओविपोसिटर लोब्स चतुर्भुज या गोलाकार और सघन रूप से सेट वाली महिला जननांग।
- एक नाव के आकार के कोकून का निर्माण जिसके एक सिरे पर ऊर्ध्वाधर निकास भट्ठा होता है।

चित्र–1

चित्र–2

चित्र–3

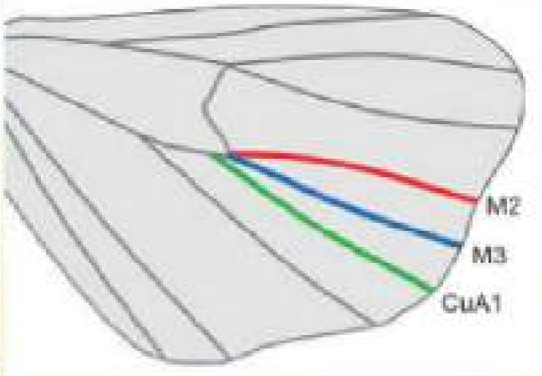

चित्र–4

चित्र–5

चित्र–6

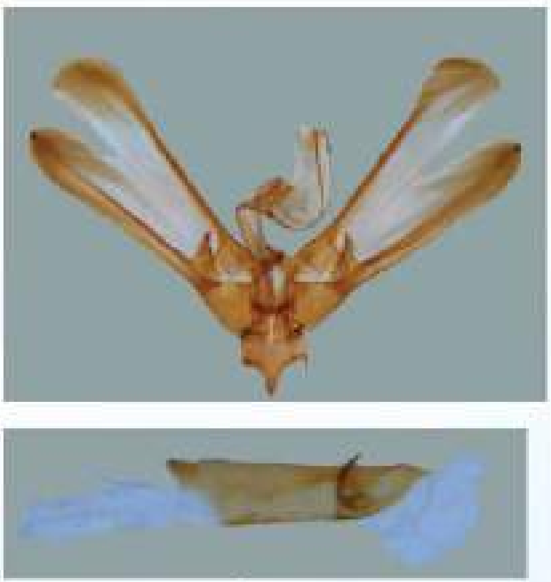

चित्र–7

चित्र–8

भारत से नोलिडी परिवार पर व्यवस्थित अध्ययन हैम्पसन (1984–1920) द्वारा संकलित किया गया था, जो कि मुख्यतः रूपात्मक विशेषताओं के आधार पर था। इसके अलावा, उन्होंने अपनी शोध सामग्री केवल चुनिंदा महत्वपूर्ण इलाकों से ही एकत्र की और उनके सर्वेक्षण भारत के कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित थे। उनके और उनके समकालीनों के बाद, कोई विस्तृत सर्वेक्षण और अध्ययन योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित तरीके से नहीं हुआ। एक शताब्दी से अधिक के इस अंतराल के दौरान, पर्यावरणीय परिस्थितियों के बदलते परिदृश्य, ज्ञान का संचय और वर्गीकरण में नए रुझानों की शुरूआत ने पतंगों के इस आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण समूह के अस्तित्व को बदल दिया होगा। लेकिन, इन परिवर्तनों को प्रमाणित करने के लिए कोई आधारभूत जानकारी उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा, हाल के वर्षों में नोलिडी परिवार के वर्गीकरण में बडे बदलाव हुए हैं। हालाँकि, इस परिवार की अधिकतम विविधता ओरिएंटल क्षेत्र से प्रदर्शित होती है, फिर भी यह समूह भारत से पूरी तरह से उपेक्षित रहा। भारत से इस परिवार का आधारभूत डेटा तैयार करने के लिए, एसईआरबी, नई दिल्ली

द्वारा 2019–2021 में एक शोध प्रस्ताव को मंजूरी दी गई जिसका शीर्षक था, "उत्तर–पूर्व भारत से परिवार नोलिडी (लेपिडोप्टेरा) का वर्गीकरण अध्ययन। इसके अंतर्गत हमारा प्राथमिक उद्देश्य, सर्वेक्षणों के माध्यम से अध्ययन के लिए अधिकतम संख्या में वयस्क पतंगों को एकत्र करना था। सर्वेक्षण 270 मीटर की न्यूनतम ऊंचाई से लेकर 2150 मीटर की अधिकतम ऊंचाई तक के (तवांग, अरुणाचल प्रदेश) विभिन्न राज्यों (अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, मिजोरम एवं असम) के अलग–अलग क्षेत्रों में किया गया। रात के समय लाइट ट्रैप की सहायता से 35 अलग–अलग जगहों पर 160 रात्रियों में कुल 2450 वयस्क पतंगों का संग्रह किया गया।

सभी एकत्र किए गए नमूनों को पिन करने के बाद उन्हें सही ढंग से फैलाया गया और प्रत्येक नमूने के नीचे संक्षिप्त जानकारी की पर्ची लगायी गई। नमूनों को उनकी रूपात्मक विशेषताओं (पंखों का रंग/पैटर्न, नमूने का आकार, आदि) के आधार पर क्रमबद्ध किया गया (चित्र–5,6) और वयस्क पतंगों (पहचाने गए एव अज्ञात) की तस्वीरें ली गईं। सभी प्रजातियों के जननांग (चित्र–7, 8) विच्छेदन किए गए और स्लाईड तैयार की गईं। वयस्क मादा के जननांगों को 3:1 के अनुपात में अल्कोहल और ग्लिसरॉल के मिश्रण वाली शीशियों में संरक्षित किया गया था। अंत में सभी प्रजननांग की तस्वीरें ली गईं ताकि प्रजाति वर्गीकरण में इन्हें उपयोग किया जा सके। परियोजना का प्राथमिक उद्देश्य 100 वर्ष से अधिक के अंतराल के बाद भारत से वयस्क नोलिड पतंगों को एकत्रित करना और नोलिडी के लिए आधारभूत आँकड़े तैयार करके, राष्ट्रीय प्राणी संग्रह को इन नमूनों से समृद्ध बनाना था। इस परियोजना के शुरू होने से पहले, भारत से प्रजातियों की सटीक संख्या तक स्पष्ट नहीं थी। हालाँकि, हमारा उद्देश्य उत्तर पूर्व भारत से नोलिडी प्रजातियों की सूची संकलित करना था, हमने एक कदम आगे बढ़ते हुए, सम्पूर्ण भारत से ही फैमिली नोलिडे का पहला मोनोग्राफ प्रकाशित किया जिसमें 98 वर्षों के अंतर्गत 354 प्रजातियाँ भारत से नोलिडी का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न भारतीय राज्यों में उनके वितरण को भी संकलित किया गया।

महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ

- उत्तर–पूर्व भारत का प्रतिनिधित्व, नोलिडी परिवार की 226 प्रजातियों द्वारा किया जाता है, जिनमें सिक्किम में सबसे अधिक 119 प्रजातियाँ हैं। सबसे कम विविधता मणिपुर एवं त्रिपुरा में है। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि नोलिडी परिवार की 63 वंशों के अंतर्गत कुल 165 प्रजातियों के नमूने की पहचान उत्तर–पूर्व भारत से की गई है। राष्ट्रीय प्राणी संग्रह को समृद्ध करने की दिशा में, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण के पास नोलिडी की 165 पूर्ण रूप से पहचानी गई प्रजातियों के नमूने हैं। इनमें से लगभग 100 ऐसी प्रजातियों के प्रतिनिधि शामिल हैं जो केवल प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय, लंदन और हंगेरियन प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय, बुडापेस्ट में मौजूद हैं और अब भारत में केवल भारतीय प्राणी सर्वेक्षण में मौजूद हैं।
- उप परिवार की बात करें तो नोलिनाई की उच्चतम प्रजाति संख्या (44 प्रजाति) सिक्किम में है जबकि क्लोएफोरिनाए की उच्चतम प्रजाति संख्या (63 प्रजाति) मेघालय में है। उप परिवार बीनिने को अब तक उत्तर–पूर्व भारत से दर्ज नहीं किया गया है। इस उप परिवार का एकमात्र रिकॉर्ड पश्चिमी घाट (केरल) और डेक्कन प्रायद्वीप (झारखंड) से है।

*****

फाइटोरेमेडिएशन द्वारा पारिस्थितिकी पुनर्स्थापनाः हिमालय में ठोस अपशिष्ट प्रदूषण का प्रबंधन

पर्णिका गुप्ता एवं वसुधा अग्निहोत्री (वैज्ञानिक ई)

गो.ब.पंत राष्ट्रीय हिमालय पर्यावरण संस्थान, कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

गो.ब.पंत राष्ट्रीय हिमालय पर्यावरण संस्थान– हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र

मोहल, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

विकास में वृद्धि के साथ, मानव ने पर्यावरण में अवक्रमणीय और गैर–अवक्रमणीय दोनों प्रकार के अपशिष्ट पदार्थों को फेंकना शुरू कर दिया है। पहले, पहाड़ी क्षेत्रों मे अपशिष्ट प्रबंधन की जरूरत नहीं थी क्योंकि ज्यादातर कचरा प्राकृतिक रूप से नष्ट हो जाता था। लेकिन पिछले कुछ दशकों में, प्लास्टिक में पैक किए गए सामान हिमालय के ज्यादातर गांवों तक पहुंच गए हैं। कपड़े, लकड़ी, पत्तों, और बांस से बने घरेलू सामान की जगह सस्ते प्लास्टिक के सामान ले रहे हैं। गांवों में इस प्रकार कचरा बढ़ गया है जो प्राकृतिक रूप से नष्ट नहीं होता। गांवों में कचरा इकड्ढा करने की कोई व्यवस्था न होने के कारण, लोग कचरे को जला देते हैं या पहाड़ और नदियों में फेंक देते हैं। सड़क, रेल, और हवाई जहाज से यात्रा आसान होने के कारण, पर्यटक हिमालयी राज्यों में बड़ी संख्या में आ रहे हैं। वे सीमांत गांवों और ट्रेकिंग रूट्स पर भी जा रहे हैं। पर्यटकों की मांग को पूरा करने के लिए, स्थानीय लोग भी पैकेज्ड सामान, पानी की बोतलें, और एक बार इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक का सामान बेचने लगे हैं। इससे पर्यटक क्षेत्रों में और उनके आसपास कचरा फैलाना, डंप करना, और जलाना बढ़ गया है। कचरे को खुले में फेंकने से कई तरह की यौगिक और हानिकारक धातुएं निकलती हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा पैदा करती हैं। ठोस कचरे से होने वाला पर्यावरण प्रदूषण दुनिया के कई हिस्सों, खासकर भारतीय हिमालयी क्षेत्र में, एक बड़ी समस्या बन गया है। पर्यावरण में छोड़े गए प्रदूषकों के नकारात्मक प्रभावों को रोकने, हटाने और सुधारने के कई तरीके और प्रक्रियाएं मौजूद हैं। लेकिन इनका उपयोग या तो ठीक से नहीं किया गया है या बिल्कुल नहीं किया गया है। यह स्थिति और भी बिगड़ रही है।

मिट्टी में प्रदूषकों के स्तर को कम करने के लिए पौधों का उपयोग करना एक किफायती तरीका है। यह प्रदूषित मिट्टी वाले स्थानों से मानव और पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य को होने वाले खतरे को कम करता है। 'फाइटोरेमेडिएशन' (phytoremediation) शब्द यूनानी उपसर्ग 'फाइटो' (पौधा) और लैटिन मूल शब्द 'रेमेडियम' (किसी बुराई को ठीक करना या हटाना) से मिलकर बना है। फाइटोरेमेडिएशन पर्यावरण में फैले प्रदूषण को साफ करने के लिए पौधों का उपयोग करता है। यह एक ऐसी तकनीक है जिसका उपयोग पारंपरिक सफाई तकनीकों के साथ या कुछ मामलों में उनकी जगह किया जा सकता है। पारंपरिक तकनीकें अक्सर बहुत महंगी होती हैं और उनमें ज्यादा श्रम और ऊर्जा की जरूरत होती है। फाइटोरेमेडिएशन एक ऐसी तकनीक है जो जीवित पौधों की प्राकृतिक क्षमताओं का उपयोग

करती है। यह पर्यावरण के अनुकूल है। इसका मूल सिद्धांत है प्रकृति का उपयोग करके प्रकृति को साफ करना। फाइटोरेमेडिएशन एक व्यापक शब्द है जिसका उपयोग वर्ष 1991 से किया जा रहा है। इसमें मिट्टी, भूजल, या अन्य प्रदूषित माध्यमों में मौजूद प्रदूषकों की मात्रा, गतिशीलता, या विषाक्तता को कम करने के लिए पौधों का उपयोग किया जाता है।

फाइटोरेमेडिएशन की कार्य प्रणाली और दक्षता प्रदूषक के प्रकार, उसकी जैव–उपलब्धता और मिट्टी के गुणों पर निर्भर करती है। पौधे कई तरीकों से प्रदूषित स्थानों को साफ करते हैं। पौधों में प्रदूषकों का अवशोषण मुख्य रूप से जड़ों की प्रणाली के माध्यम से होता है, जहाँ विषाक्तता को रोकने के प्रमुख तंत्र पाए जाते हैं। जड़ों की प्रणाली एक विशाल सतह क्षेत्र प्रदान करती है जो पानी, विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों के साथ–साथ अन्य गैर–आवश्यक प्रदूषकों को भी अवशोषित और संग्रहित करती है। इस प्रकार, जड़ों की प्रणाली फाइटोरेमेडिएशन प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो पर्यावरण से प्रदूषकों को हटाने में मदद करती है। पौधों द्वारा मिट्टी को प्रदूषण मुक्त करने के लिए लगभग पाँच फाइटोरेमेडिएशन तकनीकों का अक्सर उपयोग किया जाता है: फाइटोस्टेबिलाइजेशन (पौधों द्वारा स्थिरीकरण), फाइटोडिग्रेडेशन (पौधों द्वारा अपघटन), राइजोफिल्ट्रेशन (जड़ों द्वारा निस्पंदन), फाइटोएक्सट्रैक्शन (पौधों द्वारा निष्कर्षण, फाइटोबोलेटिलाइजेशन (पौधों द्वारा वाष्पीकरण)।

फाइटोस्टेबलाइजेशन (Phytostabilization): यह विधि मिट्टी में मौजूद विषैले तत्वों की गति को नियंत्रित या समाप्त करने के लिए की जाती है, ताकि वे पर्यावरण में न फैलें। इस प्रक्रिया में धातुओं को मिट्टी या पौधों की जड़ों में स्थिर कर दिया जाता है, जिससे ये बिना मिट्टी से हटाए, कम विषैले रूप में बदल जाते हैं।

फाइटोवोलेटिलाइजेशन (Phytovolatilization): यह प्रक्रिया पौधों द्वारा मिट्टी या पानी से विषैले तत्वों को अवशोषित करके, उन्हें संशोधित रूप में वाष्पित करने की होती है। इस पद्धति का उपयोग भारी धातुओं जैसे आर्सेनिक (As), पारा (Hg), और सेलेनियम (Se) के वाष्पीकरण के लिए किया जाता है।

फाइटोडिग्रेडेशन (Phytodegradation): इस प्रक्रिया में पौधे मिट्टी में मौजूद प्रदूषकों को विघटित और नष्ट करते हैं।

राइजोफिल्ट्रेशन (Rhizofilteration): इसे फाइटोट्रांसफॉर्मेशन (Phytotransformation) भी कहा जाता है, इसमें पौधों की जड़ों का उपयोग बहते पानी से प्रदूषकों को हटाने के लिए किया जाता है।

फाइटोएक्सट्रैक्शन (PhytoeÜtraction): इसे फाइटोअक्यूम्यूलेशन (Phytoaccumulation) भी कहा जाता है। इसमें पौधे से विषैले तत्वों को अवशोषित करके अपनी पत्तियों और तनों में जमा करते हैं। इसके बाद, इन पौधों को काटकर जलाया जाता है, और उनकी राख को सुरक्षित स्थान पर भेजा जाता है।

हाइड्रोलिक कंट्रोल (Hydraulic control): यह प्रक्रिया पौधों द्वारा पानी को अवशोषित करके प्रदूषकों के प्रवाह को नियंत्रित करने या रोकने के लिए की जाती है।

हिमालयी क्षेत्र में फाइटोरेमेडिएशन एक महत्वपूर्ण और आशाजनक तकनीक है। यह हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र में प्रदूषण की समस्या से निपटने का एक प्राकृतिक और पर्यावरण अनुकूल तरीका है। हिमालय की विविध पादप प्रजातियाँ और विभिन्न प्रकार की झाड़ियाँ और

जड़ी–बूटियाँ, प्रदूषकों को अवशोषित करने और उन्हें कम हानिकारक पदार्थों में बदलने की अद्वितीय क्षमता रखती हैं। ये पौधे न केवल मिट्टी और पानी से भारी धातुओं और अन्य प्रदूषकों को हटाने मे मदद करते हैं, बल्कि मिट्टी के कटाव को रोकने और जैव विविधता को बढ़ावा देने में भी योगदान देते हैं। हालांकि, हिमालयी क्षेत्र की जलवायु परिस्थितियों और दुर्गम भूगोल के कारण फाइटोरेमेडिएशन की प्रक्रिया चुनौतीपूर्ण हो सकती है। फिर भी, स्थानीय पौधों की प्रजातियों का उपयोग करके और सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करके, यह तकनीक हिमालयी क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण के लिए एक प्रभावी समाधान बन सकती है।

फाइटोरिमेडिएशन का उपयोग भारी धातुओं जैसे पारा (Hg), आर्सेनिक (As), कैडमियम (Cd), और सीसा (Pb) जैसे विषैले तत्वों को मिट्टी, जल या तलछट से हटाने के लिए किया जाता है। इस प्रक्रिया में विशेष पौधों का उपयोग किया जाता है, जो इन धातुओं को अपनी जड़ों के माध्यम से अवशोषित करते हैं और उन्हें अपने तनों, पत्तियों या जड़ों मे जमा करते हैं। इन पौधों को हाइपरएक्यूमुलेटर्स (Hyperaccumalators) कहा जाता है, क्योंकि ये बिना स्वयं को नुकसान पहुंचाए, भारी धातुओं को बड़ी मात्रा में अपने अंदर जमा कर सकते हैं। जब पौधे पूरी तरह से विकसित हो जाते हैं और भारी धातुओं से सेचुरेटेड हो जाते हैं, तब इन्हें काटकर सुरक्षित रूप से नष्ट किया जाता है। इस प्रक्रिया में पौधे या तो धातुओं को स्थिर कर देते हैं ताकि वे मिट्टी में नहीं फैलें, या उन्हें मिट्टी से पूरी तरह से बाहर निकाल देते हैं। हिमालय में उगने योग्य एवं भारी धातुओं के प्रदूषण कम करने की क्षमता रखने वाले पौधों की सूची निम्नलिखित है:

प्रजाति	कुल	भारी धातुएँ
साइपरसब्रीविफोलियस	साइपरेसी	U, Th, Sr, Ba, Ni, Pb
जंकसएफ्यूसस	जंकैसी	Cd, Zn, Ni, Al, Co, Cr, Ni, Pb, Cu
हाइपटिसकैपिटाटा	लैमिएसी	Cd और Cu
लुडविगियापेरुवियाना	ओनाग्रैसी	Cu, Pb, Cr, Zn, Cd, Ni, Hg
अरबिडोप्सिसथालियाना	ब्रैसिकेसी	Hg
स्टकनियापेक्टिनाटा	पोटामोजेटोनेसी	Cd, Pb, Cr, Ni, Zn, Cu का संचितक
निकोटियानाटबैकम	सोलैनेसी	Cd और Cu का संचितक, Hg के प्रति सहनशील
निकान्ड्राफिजैलोड्स	सोलैनेसी	Cr, Mn, Fe, Co, Ni, Cu, Zn, Cd, Hg, Pb
बिडेन्सपाइलोसा	एस्टेरेसी	Cd काहाइपरएक्यूमुलेटर, Pb, Cr, Ni के प्रति सहनशीला
हाइपोकेरिसरेडिकाटा	एस्टेरेसी	Zn
सोंचसओलेरेसियस	एस्टेरेसी	Pb काहाइपरएक्यूमुलेटर
टारैक्सेकमऑफिसिनाले	एस्टेरेसी	Pb, Cd, Cu, Zn, Hg, Fe, Co, Cr, Mo
चेनोपोडियम एल्बम	चेनोपोडियासी	Pb, Cu, Zn, Mn के प्रति सहनशीला
इक्विसेटमअर्वेन्से	इक्विसेटेसी	Zn, Pb और Cu का संभावित संचितक
साइनोडोनडैक्टिलॉन	पोएसी	Cu, Zn, Pb
धतूरा स्ट्रामोनियम	सोलैनेसी	Pb, Zn, Cu, Cd, As पर अध्ययन
फाइटोलाकाऐसिनोसा	फाइटोलाएकेसी	Cd, Pb, Mn

फाइटोरिमेडिएशन की प्रक्रिया से कार्बनिक प्रदूषक जैसे पेट्रोलियम पदार्थ, कीटनाशक, और औद्योगिक रसायन, पौधों द्वारा अवशोषित किए जाते हैं या पौधों के एंजाइमों द्वारा विघटित किए जाते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान पौधे या तो इन प्रदूषकों को अपनी जड़ों के माध्यम से अवशोषित करते है और उन्हें कम विषैले या गैर विषैले कूरों में परिवर्तित करते हैं, या फिर अपनी जड़ों के आस–पास मौजूद सूक्ष्मजीवों के सहयोग से इन्हें विघटित करते हैं। पौधों की जड़ें और तना इन प्रदूषकों को अवशोषित करते हैं और फिर उन्हें अपघटित कर देते हैं, जिससे मिट्टी और पानी साफ हो जाता है। हिमालय में उगने योग्य एवं कार्बनिक प्रदूषकों के प्रदूषण कम करने की क्षमता रखने वाले पौधों की सूची निम्नलिखित है:

प्रजातियाँ	परिवार	कार्बनिक प्रदूषक
जिआ मेज	पोएसी	पैंटाक्लोरोफिनॉल, पाइरीन(PCP), Pyrene)
सैलिक्स	सेलीकेसी	पैंटाक्लोरोफिनॉल(PCP)
पॉपुलसडेल्टॉइड्	सेलीकेसी	हाइड्रोकार्बन (Hydrocarbon)
ट्राइफोलियमरेपेन्स	फैबेसी	हाइड्रोकार्बन, पॉलीएरोमैटिक हाइड्रोकार्बन (PCP)
साइनोडोनडैक्टाइलोन	पोएसी	अल्किलेटेड पॉलीसाइक्लिक एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन
ब्रेसिकाकैम्पेस्ट्रिस	ब्रासिकेसी	पॉलीएरोमैटिक हाइड्रोकार्बन (PCP
एवेनासटीवा	पोएसी	पाइरीन(Pyrene)
कैप्सिकमएनम	सोलेनेसी	पाइरीन(Pyrene)
रैफेनससटाईवस	ब्रासिकेसी	पाइरीन(Pyrene)
हीलीएंथसऐनस	एस्टेरेसी	ट्राइनाइट्रोटोल्यूइन(TNT)
धतूरा स्ट्रामोनियम	सोलेनेसी	2,4–डाइक्लोरोफिनॉल (2,4–DCP)

ठोस अपशिष्ट लीचेट प्रदूषक, भारी धातुएं और कार्बनिक प्रदूषक पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करते हैं। इन प्रदूषकों की उपस्थिति न केवल मिट्टी और जल स्रोतों की गुणवत्ता को प्रभावित करती है, बल्कि मानव स्वास्थ्य के लिए भी जोखिम पैदा करती है। फाइटोरिमीडिएशन, जो कि पौधों का उपयोग कर प्रदूषकों को साफ करने की एक प्रभावी विधि है, इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। विभिन्न पौधों की प्रजातियों में प्रदूषकों को अवशोषित करने और उन्हें कम करने की क्षमता होती है, जिससे पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है। इसके अतिरिक्त, फाइटोरेमेडिएशन एक किफायती और स्थायी समाधान है, जो कि पारंपरिक तकनीकों की तुलना में कम लागत वाला और पर्यावरणीय लाभ प्रदान करने वाला है। इस प्रकार, फाइटोरेमेडिएशन न केवल ठोस अपशिष्ट लीचेट प्रदूषकों को कम करने में सहायक है, बल्कि संधारणीय पर्यावरण की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम है।

*****

वैकल्पिक रसायनों के माध्यम से स्थिरता की ओर बढ़ते कदमः नवाचार और अवसर

सोनकेश्वर शर्मा, वैज्ञानिक–सी
परिश्मिता हाजरिका, कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता
भा.वा.अ.शि.प–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद,
देवबन, जोरहाट, असम

ग्रीन केमिस्ट्री या हरित रसायन विज्ञान का मुख्य उद्देश्य रासायनिक उत्पादों और प्रक्रियाओं को इस तरह से डिजाइन करना है कि हानिकारक यौगिकों का उपयोग और उत्पादन कम से कम हो जाए या पूरी तरह समाप्त हो जाए। इस अवधारणा का विकास 1990 के दशक की शुरुआत में हुआ, और इसका उद्देश्य रासायनिक उद्योगों में स्थिरता प्राप्त करना है। हरित रसायन विज्ञान का मुख्य उद्देश्य रसायनों और प्रक्रियाओं को पर्यावरण के अनुकूल बनाना है ताकि प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग हो और प्रदूषण कम हो। रसायनज्ञों को संधारणीय और सुरक्षित रसायन बनाने में मदद करने के लिए "हरित रसायन के बारह सिद्धांत" डिजाइन किए गए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैं:

1. अपशिष्ट न बनने देना।
2. रासायनिक प्रक्रियाओं को अधिक कुशल बनाना।
3. पर्यावरण के लिए हानिकारक पदार्थों का उपयोग न करना।
4. सुरक्षित रसायनों का उत्पादन करना।
5. ऊर्जा की खपत को कम करना।
6. नवीकरणीय कच्चे माल का उपयोग करना।

ये सिद्धांत रासायनिक प्रक्रियाओं और उत्पादों के हर पहलू को ध्यान में रखते हुए बनाए गए हैं, जिससे पर्यावरण पर कम से कम प्रभाव हो।

ग्रीन केमिस्ट्री या हरित रसायन विज्ञान के प्रकार और अनुप्रयोग

हरित रसायन विज्ञान का प्रभाव व्यापक है और इसे कई उद्योगों में लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एयरोस्पेस, ऑटोमोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक्स, ऊर्जा, घरेलू वस्तुएं, फार्मास्यूटिकल्स, और कृषि उद्योग में इसका सफलतापूर्वक उपयोग हो रहा है। इन उद्योगों में ग्रीन केमिस्ट्री की तकनीकों का उपयोग करके पर्यावरण और ऊर्जा पर सकारात्मक प्रभाव डाला जा सकता है। रासायनिक उद्योग की विनिर्माण प्रक्रियाओं में ऊर्जा की खपत अधिक होती है, जिससे CO2 उत्सर्जन में वृद्धि होती है। इसलिए, हरित रसायन विज्ञान उन तरीकों को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित कर रहा है जो ऊर्जा की खपत को कम कर सकें और पारंपरिक रासायनिक प्रक्रियाओं की जगह ले सकें। हरित रसायन विज्ञान का एक और प्रमुख पहलू नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करना है, जैसे कि सौर, पवन, और जल ऊर्जा। जीवाश्म ईंधनों से दूर हटकर इन स्रोतों की ओर स्थानांतरित होने से पर्यावरण के अनुकूल प्रौद्योगिकियों और सामग्रियों का विकास हो सकता है। यह नवीकरणीय संसाधनों पर आधारित प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने का एक बेहतरीन अवसर है, जो रासायनिक अभिक्रियाओं में उपयोग की जाती हैं और कम प्रदूषण करती हैं। पिछले 20 वर्षों में, हरित रसायन विज्ञान के शोधकर्ता ने स्थायी समाधानों की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है। रासायनिक अभिक्रियाओं में सुपरक्रिटिकल फ्लुइड्स और आयोनिक लिक्विड्स जैसे नए विलायकों का उपयोग बढ़ा है, जो पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित हैं। इसके अलावा, परमाणु और सतत अर्थव्यवस्था पर भी ध्यान दिया गया है ताकि अधिक कुशल संश्लेषण अभिक्रियाएं विकसित की जा सकें। उत्प्रेरक अभिक्रियाओं में प्रगति भी हरित रसायन विज्ञान के विकास का एक प्रमुख हिस्सा है। नए उत्प्रेरक विकसित किए जा रहे हैं, जो कम ऊर्जा में तेजी से रासायनिक अभिक्रियाओं को पूरा कर सकते हैं और साथ ही पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचाते। हरित रसायन विज्ञान का उद्देश्य नई उत्प्रेरक अभिक्रियाओं के माध्यम से रासायनिक अभिक्रियाओं को अधिक कुशल और सुरक्षित बनाना है, जिससे मनुष्य और पर्यावरण दोनों सुरक्षित रहें। उत्कृष्ट, स्पेशलिस्ट और औषधीय रसायनों के उत्पादन में पर्यावरण अनुकूलित अथवा ग्रीन उत्प्रेरण की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि यह परमाणु दक्षता और प्रक्रिया सरलता को अनुकूलित करता है। इसके अलावा, नए प्रकार के उत्प्रेरक डिजाइन किए जा रहे हैं जो पर्यावरण के अनुकूल हैं और उन्हें बार–बार पुनः उपयोग किया जा सकता है।

हरित विलायक (सॉल्वेंट्स) का विकास भी हरित रसायन विज्ञान के शोध का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। पुराने विलायक जैसे पेट्रोलियम आधारित विलायक, जो जैविक होते हैं, हमारी रासायनिक प्रक्रियाओं की नींव रहे हैं। लेकिन वे स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए जोखिम उत्पन्न करते हैं। हरित रसायन विज्ञान के शोधकर्ता नए स्मार्ट विलायक विकसित करने पर काम कर रहे हैं, जो विशेष परिस्थितियों के अनुसार प्रतिक्रिया करते हैं, जैसे तापमान के अनुसार बदलने वाले विलायक। हरित रसायन विज्ञान ने हरित विकल्प के रूप में उद्योगों में कई सफलताएँ हासिल की हैं। उदाहरण के लिए, डाउ केमिकल ने सुपरक्रिटिकल कार्बन डाइऑक्साइड (scCO2) का उपयोग करके एक नई प्रक्रिया विकसित की, जिससे क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFCs) जैसे हानिकारक रसायनों का उपयोग बंद हो गया। नोवोजाइम्स ने भी एक एंजाइमेटिक प्रक्रिया विकसित की, जिसने रासायनिक अभिक्रियाओं में पानी और ऊर्जा की खपत को कम किया।

हालांकि हरित रसायन विज्ञान ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, फिर भी बहुत से बुनियादी शोध किए जाने बाकी हैं। विलायक (सॉल्वेंट्स), उत्प्रेरक और अन्य रासायनिक अभिक्रियाओं में सुधार की काफी संभावनाएं हैं, जिससे न केवल पर्यावरणीय लाभ होंगे, बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से भी यह फायदेमंद होगा। इसके साथ ही समुदाय और नीति निर्धारकों के साथ संवाद भी आवश्यक है ताकि ग्रीन केमिस्ट्री के महत्व को समझाया जा सके। वैज्ञानिकों को यह सुनिश्चित करना होगा कि ग्रीनवॉशिंग या गलत कानूनों से बचा जा सके और सही दिशा में निवेश किया जा सके।

अंततः हरित रसायन विज्ञान की सफलता उन वैज्ञानिकों पर निर्भर करेगी, जो नई दृष्टि से इस क्षेत्र में काम करेंगे। यह न केवल पर्यावरणीय स्थिरता के लिए आवश्यक खोजों को बढ़ावा देगा, बल्कि प्रौद्योगिकी और उद्योग के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। हरित रसायन विज्ञान के नियम और पुरस्कार इस क्षेत्र को आगे बढ़ाने में मदद करेंगे, जिससे न केवल हानिकारक रसायनों के विकल्प विकसित होंगे, बल्कि उद्योगों में सुधार भी होगा। कई क्षेत्रों में अभी भी हरित रसायन विज्ञान के सिद्धांतों का पूरी तरह से उपयोग नहीं किया गया है, लेकिन भविष्य में यह आवश्यक होगा कि इन सिद्धांतों को उद्योगों में लागू किया जाए ताकि पर्यावरणीय प्रभाव को कम किया जा सके और संधारणीयता को बढ़ावा दिया जा सके।

******

जलवायु परिवर्तन के बहुआयामी प्रभाव

प्राजवी शर्मा एवं केसर चन्द

गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,

हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मोहल, कुल्लू

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि हुई है जिसका पर्यावरण पर अत्यंत प्रभाव पड़ा है। तापमान में वृद्धि के कारण लगातार सूखा, गर्मी की लहरें, कीट और रोग जनक प्रकोप, कई आपदाओं की आवृत्ति और तीव्रता में वृद्धि आदि होती है। पिछले कुछ वर्षों में वनों में आग लगने की आपदा में वृद्धि हुई है और इसके लिए तापमान में प्रवर्धन को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जिससे वनस्पति सूख जाती है और यह ज्वलनशील जंगल की आग की चपेट में आ जाती हैं। इसके अलावा वर्षा के स्वरूप में भिन्नता जैसे कि अधिक वर्षा और उसके बाद शुष्क मौसम वनों में लगने वाली आग के प्रति वन, वनस्पति की संवेदनशीलता को बढ़ाते हैं। सूखे और जंगल की आग के बीच एक चक्रीय संबंध भी है, सूखे की स्थिति जंगल की आग से बढ़ जाती है क्योंकि यह कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन का कारण बनती है जो बदले में वैश्विक तापमान को बढ़ाती है जिससे सूखे की घटनाओं में वृद्धि होती है, इसी तरह लंबे समय तक सूखे की स्थिति मिट्टी की नमी के स्तर को कम करती है, जिससे वनस्पतियों के लिए तनावपूर्ण स्थितियां पैदा होती हैं। लंबे समय तक अधिक तापमान रहने से छाल भृंग जैसे कुछ कीटों का प्रकोप होता है (वैमैन एट अल, 2021)। कीट, छाल भृंग को पेड़ों की छाल पर हमला करने के लिए जाना जाता है, यह पेड़ की छाल में अंडे देता है, और इसलिए पेडों को कमजोर बनाने, जंगल की आग के लिए कारण बनता है, इससे पेड़ सूख जाते हैं तथा शाखाएं और पत्ते गिर जाते हैं जो ईंधन बन जाते हैं।

जलवायु के बदलते स्वरूप भूस्खलन आपदा की घटना को भी प्रभावित करते हैं। बढ़ी हुई और असामयिक वर्षा मिट्टी को सेचुरेशन की ओर ले जाती है, मिट्टी की स्थिरता को कम करती है और इसे भूस्खलन के लिए असुरक्षित बनाती है। इसके अलावा, अतिरिक्त वर्षा मिट्टी को कटाव के लिए अधिक प्रवण बनाती है जो बदले में मिट्टी के कणों के आसंजन और सामंजस्य गुणों को कम करती है जिससे स्लॉप फेल्यर के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है। लंबे समय तक सूखे की स्थिति मिट्टी की बांधने की क्षमता को भी कम कर देती है और मिट्टी के क्षरण की संभावना हो जाती है, जो स्लॉप फेल्यर में भी योगदान देती है। वर्ष 2023 में, हिमाचल प्रदेश बाढ़ और बादल फटने की घटनाओं से अत्यधिक प्रभावित हुआ था, जिसके कारण राज्य के कई क्षेत्रों में स्लॉप फेल्यर हुए और अत्यधिक क्षति पहुंची।

लंबे समय तक शुष्क मौसम और अत्यधिक वर्षा जैसी चरम स्थिति की मौसम की घटनाएं फसल की विफलता का भी कारण बनती हैं। इस तरह की घटनाएं कुछ कीटों और रोगजनकों के प्रतिरूप और चक्र को बदल देती हैं। विस्तारित शुष्क अवधि के कारण पानी की कमी हो जाती है, जिससे पौधे रोगजनकों द्वारा संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं जो फाइटोफ्थोरा प्रजाति की वजह से होने वाले डाई बैक रोग का कारण बनती हैं। रोगजनकों की संख्या की गतिशीलता, जिसमें अतिशीतकालीन में भी जीवित रहने की दर, संख्या वृद्धि दर और पॉलीसाइक्लिक

प्रजातियों में पीढ़ियों की संख्या शामिल है, जलवायु परिवर्तन से काफी अधिक प्रभावित हो सकती है। रोगजनक की ऊष्मायन अवधि तापमान और नमी की स्थिति पर अत्यधिक निर्भर करती है, तापमान में वृद्धि से रोग जनकों की ऊष्मायन अवधि में कमी आती है जिससे इनकी संख्या बढ़ जाती है और इसलिए रोगजनक की विषाक्तता बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, आलू के लेट ब्लाइट का कारण बनने वाले रोगजनक फाइटोप्थोरा इन्फिस्टेंस की विषाक्तता उच्च आर्द्रता के साथ संयोजन में उच्च तापमान में बढ़ जाती है (सिंह एट अल, 2023)।

कई अध्ययनों से पता चला है कि यदि तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होती है तो कीड़ों का जीवन चक्र एक ही मौसम में एक से बढ़कर पांच हो जाता है। इसलिए, एक विशिष्ट अनुकूल सीमा के भीतर तापमान में वृद्धि उन दरों को तेज कर सकती है जिन पर उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय कीट अपने प्रजनन चक्र और अन्य प्रक्रियाओं का समर्थन करके विकसित होते हैं (यामामुरा, के और किरितानी, के, 1998)। नतीजतन, कीटों में वर्ष में अधिक बार प्रजनन करने की क्षमता होगी जिससे उनकी प्रचुरता में वृद्धि होगी। इसके अलावा, चयापचय प्रक्रियाओं को ऊंचे तापमान के साथ प्रवर्धित किया जाता है, इससे संग्रहीत पोषक तत्व तेजी दर से कम होते हैं और कीटों की डायपोज अवधि में कमी आती हैं तथा प्रजनन में भी तेजी आती है जल्दी उद्भव और कीटों के सक्रिय विकास की शुरुआत होती है। कीटों की संक्रमण क्षमता को निध ारित करने वाले शक्तिशाली कारकों में से एक फैलाव क्षमता भी है, एफिड्स और पतंगों पर कुछ शोधों ने संकेत दिया है कि तापमान में वृद्धि पूर्व की उड़ान स्थितियों की ओर ले जाती है (रेड्डी एट अल, 2013)। अंत में यह कहा जा सकता है कि जलवायु परिवर्तन के बहुखंडीय प्रभाव हैं जो हमारे पर्यावरण को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करते हैं।

*****

सतत वन प्रबंधन और संरक्षण के लिए रिमोट सेंसिंग और जीआईएस का महत्व

आकांक्षा थापा एवं स्वर्ण लता

भा.वा.अ.शि.प. हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान,
शिमला (हि.प्र.)

वन पृथ्वी के प्राकृतिक संतुलन के लिए महत्वपूर्ण हैं, वे कार्बन जमा करके तापमान नियंत्रित करते हैं और जैव विविधता बनाए रखने में मदद करते हैं। ये जल चक्र को विनियमित करने, मृदा अपरदन रोकने और हवा–पानी को साफ करने का काम करते हैं, साथ ही लकड़ी, भोजन, दवा और आश्रय जैसे संसाधन प्रदान करते है। वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता के नुकसान के कारण, वन संसाधनों की निगरानी अब आवश्यक हो गई है। पारंपरिक तरीकों की जगह अब रिमोट सेंसिंग और जी आई एस जैसी आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है, जो वनों की जांच, संरक्षण और प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मशीन लर्निंग के साथ इन तकनीकों ने वनों के स्थायी प्रबंधन को और प्रभावी बना दिया है।

रिमोट सेंसिंगः वन निगरानी में क्रांति

रिमोट सेंसिंग में उपग्रह, ड्रोन और विमानों से दृश्य, अवरक्त और रडार डेटा एकत्र किया जाता है, जिससे वन प्रबंधक बड़े एवं दुर्गम क्षेत्रों की निगरानी कर सकते हैं। तकनीकी प्रगति से अब वन क्षेत्र और बायोमास का सटीक मानचित्रण संभव है। उदाहरण के लिए, LIDAR तकनीक से छत्र (canopy) की ऊँचाई और घनत्व जैसे वन स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण संकेतक मापे जाते हैं। राष्ट्रीय वैमानिकी एवं अंतरिक्ष प्रशासन के लैंडसैट उपग्रह 1970 से वनों की कटाई और वन स्वास्थ्य पर डेटा प्रदान कर रहे हैं।

जीआईएसः स्थानिक विश्लेषण और वन प्रबंधन

जीआईएस का उपयोग स्थानिक डेटा को संग्रहीत और विश्लेषित कर वन प्रबंधन में किया जाता है। विभिन्न परतों (मिट्टी, वनस्पति, स्थलाकृति) का विश्लेषण कर वन प्रबंधक संसाधन आवंटन और संरक्षण योजनाएं बनाते हैं। ArcGIS और QGIS जैसे सॉफ्टवेयर का उपयोग करके इन परतों का सटीक विश्लेषण किया जा सकता है, जिससे प्रबंधन और संरक्षण कार्यों की योजना बेहतर ढंग से बनाई जा सके। उदाहरण के लिए, भारत के पश्चिमी घाट में जीआईएस से वन्यजीव गलियारों का मानचित्रण कर जैव विविधता की रक्षा में मदद मिली है।

वन निगरानी, संरक्षण और प्रबंधन में रिमोट सेंसिंग और जीआईएस के अनुप्रयोग

रिमोट सेंसिंग और जीआईएस का संयोजन वन संरक्षण और प्रबंधन में कई तरह के अनुप्रयोग प्रदान करता है, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

वन निगरानी और मानचित्रण

रिमोट सेंसिंग का एक प्रमुख उपयोग वनों की कटाई और क्षरण की निगरानी है। वन प्रबंधक उपग्रह छवियों की तुलना करके वन आवरण में हुए बदलाव को ट्रैक कर सकते हैं। जब रिमोट सेंसिंग को जीआईएस के साथ जोड़ा जाता है, तो यह

छत्र, पेड़ घनत्व, वन विखंडन और अवैध कटाई पर विस्तृत डेटा प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, अमेजन वर्षा वन की अवैध कटाई और कृषि विस्तार को उपग्रह डेटा से ट्रैक किया जाता है। ग्लोबल फॉरेस्ट वॉच जैसे प्लेटफॉर्म उपग्रह डेटा का उपयोग करके दुनिया भर में लगभग वास्तविक समय में वन आवरण परिवर्तनों की निगरानी करते हैं, जिससे सरकारों और समुदायों को वनों की कटाई रोकने में मदद मिलती है।

वन सूची

वन सूची का मुख्य उद्देश्य वन प्रबंधन के लिए सूचित निर्णय लेना है, और इसमें रिमोट सेंसिंग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सैटेलाइट इमेजरी, हवाई तस्वीरों और एलआईडीएआर के माध्यम से वन प्रबंधक वृक्ष प्रजातियों का वितरण, छत्र आवरण, ऊँचाई, बायोमास और कार्बन स्टॉक का आकलन कर सकते हैं। यह तकनीक विशाल क्षेत्रों की कुशल निगरानी करती है और समय लेने वाले जमीनी सर्वेक्षणों की आवश्यकता को कम करती है। वन आवरण परिवर्तन और वनों की कटाई की पहचान में रिमोट सेंसिंग उपयोगी है। भारतीय वन सर्वेक्षण ने अपनी राष्ट्रीय योजना में आरएस और जीआईएस तकनीकों को शामिल करके सटीकता और दक्षता बढ़ाई है।

वन सूचना विज्ञान

भौगोलिक सूचना प्रणाली जीआईएस वन सूचना विज्ञान में एक शक्तिशाली उपकरण है, जो स्थलाकृति, मिट्टी, वनस्पति और जलवायु जैसे विभिन्न डेटा परतों को मिलाकर विस्तृत विश्लेषण और निर्णय लेने में मदद करता है। जीआईएस का उपयोग वन मानचित्र बनाने, जैव विविधता और वन्यजीव ट्रैक करने, जंगल की आग के जोखिमों का आकलन करने और पुनर्वनीकरण क्षेत्रों की पहचान में किया जाता है। यह वन प्रबंधन की सटीकता और दक्षता में सुधार करता है। उदाहरण के लिए, हिमाचल प्रदेश में वाटरशेड प्रबंधन और वन संरक्षण के लिए AHP और WLC जैसे MCDM उपकरणों का उपयोग किया गया, जिससे कटाव के प्रति संवेदनशील क्षेत्रों की पहचान कर मृदा संरक्षण और पुनर्वनीकरण की योजना बनाई गई।

वन पारिस्थितिकी तंत्र विश्लेषण

रिमोट सेंसिंग तकनीक वन संरचना और आवास प्रकारों का विश्लेषण करके जैव विविधता का मानचित्रण करती है। सेंटिनल–2 जैसे उपग्रह उच्च जैवविविधता वाले क्षेत्रों की पहचान कर सकते हैं, और जीआईएस के साथ जुड़ने पर, मानवीय गतिविधियों के वन्यजीव आवासों पर प्रभाव का आकलन कर बहाली की योजना बनाई जा सकती है। मल्टीस्पेक्ट्रल और हाइपरस्पेक्ट्रल इमेजरी तनाव, बीमारी या कीट क्षति के शुरुआती संकेतों का पता लगा सकती है। उदाहरण के लिए, उत्तरी अमेरिका में बार्क बीटल संक्रमण की मल्टीस्पेक्ट्रल रिमोट सेंसिंग से निगरानी कर, जीआईएस के जरिए प्रभावित क्षेत्रों का मानचित्रण कर, अधिक संवेदनशील क्षेत्रों में शमन प्रयास किए गए हैं।

वन निगरानी में मशीन लर्निंग की भूमिका

रिमोट सेंसिंग तकनीकों द्वारा भारी मात्रा में उत्पन्न डेटा का विश्लेषण करने में मशीन लर्निंग एक प्रमुख भूमिका निभा रही है। रैंडम फॉरेस्ट, सपोर्ट वेक्टर मशीन एसवीएम, और कन्वोल्यूशनल न्यूरल नेटवर्क सीएनएन जैसे एल्गोरिदम, भूमि आवरण को वर्गीकृत करने, वनों की कटाई की भविष्यवाणी करने और उच्च सटीकता के साथ उपग्रह इमेजरी से वन स्वास्थ्य मुद्दों की पहचान करने में सक्षम हैं।

चुनौतियाँ और भविष्य की दिशाएँ

रिमोट सेंसिंग और जीआईएस में प्रगति के बावजूद, उच्च–रिजॉल्यूशन सैटेलाइट इमेजरी की लागत, विशेष सॉफ्टवेयर और कौशल की आवश्यकता और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में बादलों की बाधाएं प्रमुख चुनौतियां हैं। हालांकि, मुफ्त सैटेलाइट डेटा (जैसे सेंटिनल–2) और एसएआर जैसी रडार प्रणालियों का उपयोग इन समस्याओं को हल कर रहा है। भविष्य में एआई , क्लाउड कंप्यूटिंग, मशीन लर्निंग और उन्नत सेंसर का एकीकरण वन प्रबंधन की क्षमताओं को और मजबूत करेगा, जिससे वनों की वास्तविक समय में निगरानी और संरक्षण योजनाओं में सुधार होगा।

निष्कर्ष

रिमोट सेंसिंग और जीआईएस की आधुनिक तकनीकों ने वन स्वास्थ्य, जैव विविधता और मानवीय गतिविधियों के प्रभावों के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान करके वनों के प्रबंधन, संरक्षण और निगरानी में क्रांति ला दी है। ये तकनीकें वन प्रबंधकों को इन महत्वपूर्ण पारिस्थिति प्रणालियों की सुरक्षा के लिए डेटा–संचालित एवं सूचित निर्णय लेने में सक्षम बनाती हैं। जैसे–जैसे मशीन लर्निंग और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) में प्रगति होती जा रही है, वे वनों की निगरानी और प्रबंधन करने की हमारी क्षमता को और बढ़ाएँगे, जिससे उनकी दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित होगी। दक्षता और सटीकता को अधिकतम करने के लिए, अनुसंधान संस्थानों और शैक्षिक केंद्रों को इन अत्याधुनिक तकनीकों के साथ पारंपरिक तरीकों को एकीकृत करना चाहिए और उन्हें दैनिक कार्यों में अपनाना चाहिए। ऐसा करके, वे निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सुधार कर सकते हैं, परिणामों में तेजी ला सकते हैं और अधिक प्रभावी वन प्रबंधन और संरक्षण प्रयासों में योगदान दे सकते हैं।

******

चिलगोजाः हिमाचल प्रदेश की एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक वन सम्पदा और आर्थिक आधार

नवीन एवं स्वर्ण लता

भा.वा.अ.शि.प.– हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला (हि.प्र.)

परिचय

हिमाचल प्रदेश अपनी प्राकृतिक सुंदरता और जैवविविधता के लिए जाना जाता है। ऊंचे पहाड़ों, हरी–भरी घाटियों और साफ–सुथरी नदियों के बीच यहाँ अनेक प्रकार के वनस्पति और वन संसाधन पनपते हैं। इन्हीं में से एक विशेष और बहुमूल्य वनस्पति है चिलगोजा। चिलगोजा, जिसे अंग्रेजी में "चिलगोजा पाइननट" कहते हैं, हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में पाया जाने वाला एक अनमोल वृक्ष है। इसका वैज्ञानिक नाम पाइनस जिरारडियाना है और यह हिमाचल के साथ–साथ जम्मू–कश्मीर के किश्तवाड क्षेत्र में भी पाया जाता है।

चिलगोजा का महत्व

चिलगोजा न केवल एक बहुमूल्य खाद्य उत्पाद है, बल्कि यह आर्थिक और औषधीय दृष्टिकोण से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। किन्नौर जिले में यह मुख्य रूप से पाया जाता है और इसकी उच्च पोषण गुणवत्ता के कारण इसकी मांग देश और विदेशों में लगातार बढ़ रही है। इसका बीज, जो बेहद स्वादिष्ट होता है, प्रोटीन, फैट और अन्य पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इसे स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है और इसका उपयोग स्नैक्स, मिठाई और विभिन्न व्यंजनों में किया जाता है। इसके अलावा, चिलगोजा आयुर्वेदिक उपचारों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके बीजों का उपयोग कई बीमारियों के उपचार में किया जाता है, जैसे कि यह शारीरिक शक्ति बढ़ाने और ऊर्जा का अच्छा स्रोत माना जाता है। इसके एंटी ऑक्सिडेंट्स और एंटी–इंफ्लेमेटरी गुण इसे औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाते हैं।

स्थानीय लोगों द्वारा एकत्रित चिलगोजा शंकु एवं बीज

चिलगोजा के पेड़ों का पर्यावरणीय महत्व

चिलगोजा के पेड़ केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि पर्यावरणीय दृष्टि से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। ये पेड़ ऊँचाई पर पाए जाते हैं और

हिमालयी क्षेत्र के पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चिलगोजा के पेड़ मिट्टी के क्षरण को रोकने और जलवायु परिवर्तन से लड़ने में मददगार होते हैं। इसके साथ ही यह वनों की जैव विविधता को बनाए रखने में भी योगदान देते हैं, क्योंकि इसके बीज और पेड़ स्थानीय वन्य जीवों के लिए भोजन और आश्रय का स्रोत होते हैं।

चिलगोजा के पेड़ों का जंगल

आर्थिक दृष्टिकोण से चिलगोजा का महत्त्व

चिलगोजा हिमाचल के किसानों और स्थानीय व्यापारियों के लिए आय का एक प्रमुख स्रोत है। चिलगोजा के बीजों की मांग देश और विदेशों में तेजी से बढ़ रही है, जिससे स्थानीय किसानों को अच्छा मुनाफा हो रहा है। एक किलोग्राम चिलगोजा की कीमत 1500 रुपये से 2300 रुपये तक हो सकती है, जो इसे एक उच्च मूल्य वाली वन्य फसल बनाता है। इसके कारण हिमाचल के किन्नौर एवं चंबा के पांगी के भरमौर क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी समुदायों के जीवन स्तर में भी सुधार आ रहा है। साथ ही, सरकार द्वारा चलाए जा रहे प्रशिक्षण और समर्थन कार्यक्रमों के माध्यम स्थानीयों को चिलगोजा के संरक्षण और इसके बाजार मूल्य को समझने में मदद मिल रही है। इससे न केवल स्थानीयों को आर्थिक लाभ हो रहा है, बल्कि वे इस अनमोल प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

चिलगोजा उत्पादन की चुनौतियां

हालांकि चिलगोजा के पेड़ प्राकृतिक रूप से उगते हैं, लेकिन इसके उत्पादन में कई चुनौतियाँ हैं। पहला, इन पेड़ों की उगने की प्रक्रिया काफी धीमी होती है। एक चिलगोजा पेड़ को पूरी तरह से विकसित होने में लगभग 35–40 साल लग जाते हैं। इसके साथ ही, इन पेड़ों की ऊंचाई और कठोर जलवायु परिस्थितियों के कारण इनके संरक्षण और उत्पादन में कठिनाई होती है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन और अत्यधिक दोहन के कारण चिलगोजा के पेड़ों की संख्या में धीरे–धीरे कमी हो रही है। लगातार बदलते मौसम के कारण इन पेड़ों का प्राकृतिक पुनर्जनन प्रभावित हो रहा है, जो चिंता का विषय है।

संरक्षण और संधारणीय विकास के प्रयास

हिमाचल प्रदेश सरकार चिलगोजा के संरक्षण और इसके संधारणीय विकास के लिए कई प्रयास कर रही है। इसके अंतर्गत, वृक्षारोपण कार्यक्रम, वन संरक्षण नीतियाँ और किसानों को आर्थिक सहायता जैसे कदम उठाए जा रहे हैं। इसके अलावा, किन्नौर और अन्य जिलों में चिलगोजा उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए शोध और तकनीकी सहायता भी प्रदान की जा रही है। साथ ही, स्थानीय समुदाय भी चिलगोजा के संरक्षण और इसके आर्थिक उपयोग को लेकर जागरूक हो रहे हैं। वे अपने पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकों के मेल से चिलगोजा के पेड़ों का संरक्षण कर रहे हैं और इसके उत्पादन में सुधार कर रहे हैं।

निष्कर्ष

चिलगोजा हिमाचल प्रदेश की एक अनमोल प्राकृतिक धरोहर है। इसका आर्थिक, पर्यावरणीय और औषधीय महत्व इसे विशेष बनाता है। हालांकि, इसके उत्पादन और संरक्षण में कई चुनौतियाँ हैं, लेकिन संधारणीय विकास और संरक्षण के प्रयासों से इसे बचाया जा सकता है। स्थानीय समुदायों, सरकार और वैज्ञानिकों के मिल–जुल कर किए गए प्रयासों से चिलगोजा की यह अनमोल संपदा आने वाले समय में और भी समृद्ध हो सकती है। हिमाचल प्रदेश के इस बहुमूल्य संसाधन का संरक्षण और सतत उपयोग न केवल पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को भी मजबूती मिलेगी।

******

हिमाचल प्रदेश के देववन और जैव विविधता संरक्षण में उनकी भूमिका

ऋषभ शर्मा एवं स्वर्ण लता
भा.वा.अ.शि.प., हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान,
शिमला (हि.प्र.)

शांगढ़ देव वन, कुल्लू

हिमाचल प्रदेश, जिसे देवभूमि के नाम से भी जाना जाता है, अपने अद्वितीय प्राकृतिक सौंदर्य, पहाड़ों और घने वनों के लिए प्रसिद्ध है। यहां की जैव विविधता समृद्ध और विविध है, जिसमें वनस्पतियों और जीवों की कई दुर्लभ और अद्वितीय प्रजातियाँ पाई जाती हैं। हिमाचल प्रदेश के 'पवित्र वन' या देव वन न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व रखते हैं, बल्कि जैव विविधता संरक्षण में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन वनों को 'सैक्रेड ग्रोव्स' के नाम से भी जाना जाता है, जो स्थानीय समुदायों द्वारा संरक्षित होते हैं और जिनमें देवताओं का वास माना जाता है।

शांगढ़ देववन, कुल्लू

देव वन का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व

हिमाचल प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में देव वन स्थानीय समुदायों की धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान का एक अहम हिस्सा है। स्थानीय लोग इन वनों को देवी–देवताओं, परियों या पूर्वजों के आवास स्थल मानते हैं और इन वनों की पूजा करते हैं। इन वनों मे प्रवेश और उनके संसाधनों का उपयोग बहुत ही नियंत्रित और सीमित होता है, क्योंकि स्थानीय लोगों की यह मान्यता होती है कि इन वनों को नुकसान पहुंचाने से देवता नाराज हो सकते हैं और बुरे परिणाम हो सकते हैं। इस प्रकार, ये पवित्र वन स्वाभाविक रूप से संरक्षित हो जाते हैं और वहां की जैव विविधता को बचाए भी रखते हैं। इन वनों की सुरक्षा तथा व्यवस्था का कार्य स्थानीय लोगों द्वारा किया जाता है। इसके लिए लोगों द्वारा कमेटी का गठन किया जाता है जो इन वन क्षेत्रों में बने मंदिर और वन की सुरक्षा तथा व्यवस्था से सम्बंधित निर्णय लेते हैं।

जैव विविधता संरक्षण में देव वनों की भूमिका

देव वनों का जैव विविधता संरक्षण में अहम योगदान होता है क्योंकि इन वनों को धार्मिक आस्था के कारण काटा या नष्ट नहीं किया जाता है जिस कारण वे प्राकृतिक रूप से संरक्षित रहते हैं। इन वनों में वनस्पतियों और जीवों की कई दुर्लभ और संवेदनशील प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से कुछ तो केवल इन वनों में ही जीवित रह पाती हैं। पवित्र वन वन्य जीवन के लिए प्राकृतिक आवास का कार्य करते हैं, जहां जानवर, पक्षी और कीट बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के सुरक्षित रूप से रहते हैं।

देव वनों का पर्यावरणीय महत्व

देव वन पर्यावरणीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। ये वन जैव विविधता के हॉटस्पॉट के रूप में कार्य करते हैं, जहाँ पेड़ों की प्राचीन प्रजातियाँ और औषधीय पौधे संरक्षित रहते हैं। इन वनों की मिट्टी समृद्ध होती है और यहां के पेड़ जल संरक्षण में भी सहायक होते हैं। इससे क्षेत्रीय जलवायु संतुलन बना रहता है और प्राकृतिक आपदाओं, जैसे कि भूस्खलन और बाढ़ की घटनाओं को नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, देव वन कार्बन अवशोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में सहायक होते हैं। इन वनों की जैव विविधता पर्यावरण के विभिन्न घटकों, जैसे जल, मिट्टी, और वायु की गुणवत्ता को भी बनाए रखती है। इन वनों में कई ऐसे दुर्लभ पौधे भी पाए जाते हैं जो अन्य स्थानों से लुप्त हो चुके हैं तथा आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। ये वन और भी कई महत्वपूर्ण वस्तुओं के स्रोत हैं जैसे कि फल, फूल, घास–पत्ती, पशु आहार, औषधीय तथा विभिन्न सुगन्धित पौधे इत्यादि।

खाज्जियार देव वन, चम्बा

स्थानीय समुदायों और सरकार की भूमिका

हिमाचल प्रदेश में देव वनों की सुरक्षा का जिम्मा मुख्य रूप से स्थानीय समुदायों पर निर्भर है। हालांकि, सरकार और गैर–सरकारी संगठनों ने भी समय–समय पर इन वनों की सुरक्षा के लिए कदम उठाए हैं। कुछ स्थानों पर वन विभाग, जैव विविधता बोर्ड और स्थानीय समुदाय मिलकर पवित्र वनों की देख–रेख करते हैं, ताकि यहां की जैव विविधता संरक्षित रह सके और पवित्रता बनी रहे।

तानी जुब्बर देव वन, शिमला

निष्कर्ष

हिमाचल प्रदेश के देव वन जैव विविधता संरक्षण में एक अनूठी और महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धार्मिक आस्था और स्थानीय परंपराओं के कारण ये वन प्रकृति के साथ सामंजस्य में रहते हैं और वन्यजीवों व वनस्पतियों के लिए सुरक्षित आवास प्रदान करते हैं। इन वनों की सुरक्षा न केवल सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा करती है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी सहायक है। ऐसे में यह जरूरी है कि स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर सरकार और अन्य संस्थान इन पवित्र वनों की सुरक्षा को प्राथमिकता दें और हिमाचल प्रदेश की जैव विविधता को संरक्षित रखें।

*****

औषधीय गुणों से परिपूर्ण – हेडिचियम स्पिकैटम

दृष्टि शर्मा, वरिष्ठ तकनीशियन व
अखिल कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी
भा० वा०अ० शि०प०–हि०व०अ०सं० शिमला हि०प्र०

परिचय

स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में औषधीय पौधों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। हेडिचियम स्पिकैटम बुच–हैम औषधीय पौधों में से एक है जो जिंगिबेरासी परिवार (अदरक परिवार) से संबंधित है। इस पौधे को आमतौर पर अंग्रेजी में स्पाइक्ड जिंजर लिली और हिंदी में कचूर और संस्कृत में शती के नाम से जाना जाता है। स्थानीय रूप से इस पौधे को कचूर के नाम से जाना जाता है। व्यावसायिक रूप से मूल्यवान प्रकंदों के कारण इसका व्यापारिक नाम कपूरकचरी है। यह अपने प्रकंदों के कारण व्यावसायिक रूप से मूल्यवान पौधा है। इस प्रकंद पौधे का अपने असाधारण रोग–निवारक गुणों के कारण आयुर्वेद में महत्वपूर्ण स्थान है साथ ही तिब्बती दवाईयों मे भी इसका उपयोग किया जाता है। यह पौधा विशिष्ट सुगंध, सुंदर पत्ते और आकर्षक फूलों से परिपूर्ण है। संकटग्रस्त प्रजातियों की आईयूसीएन (IUCN) की लाल सूची में इसे "कम चिंता" (Least Concern) वर्ग मे वर्गीकृत किया गया है

जिंगिबेरासी परिवार आमतौर पर अपने असाधारण चिकित्सीय गुणों के लिए जाना जाता है। हेडिचियम स्पिकैटम (हैम–एक्स–स्मिथ) जिंगिबेरासी परिवार से संबंधित एक बारहमासी प्रकंद जडी बूटी है। यह पौधा 1200 से 2800 मीटर की ऊंचाई पर पाया जाता है। यह पौधा भारत, मलेशिया, नेपाल, भूटान, म्यांमार, उत्तरी थाईलैंड और चीन में भी व्यापक रूप से पाया जाता है। भारत में यह मुख्य रूप से असम, अरुणाचल प्रदेश, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में यह चायल, शिमला और सिरमौर जिले के कुछ क्षेत्रों में अलग–अलग हिस्सों में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिले में कुछ स्थानों में अदरक के साथ इसकी खेती भी की जाती है।

विवरण

हेडिचियम स्पिकैटम एक बारहमासी प्रकंद औषधीय जडी बूटी है इसका पौधा हरा पत्तेदार, पत्तियाँ विच्छेदितय लैमिना आयताकार–लांसोलेट, चमकदार होता है,जिसमें एक सीधा पत्तीदार तना होता है और लगभग 5–150 सेमी की ऊंचाई तक पहुंचता है। इसके प्रकंद 7.5 सेमी व्यास तक के होते हैं, यह मिट्टी की सतह के नीचे रेशेदार जड़ों के साथ भूरे रंग के होते हैं। इसके फूल उभयलिंगी, सुगंधित और गुलाबी सफेद रंग के होते हैं जिनका आधार नारंगी–पीला या लाल होता है। इस पौधे में जुलाई–सितंबर माह में फूल आते हैं।

पौधे की खेती

बाह्य रूप से प्रकंद पीले–भूरे रंग के होते हैं लेकिन भंडारण करने पर वे गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। प्रत्येक टुकडे के एक किनारे पर खुरदरी लाल भूरे रंग की परत मौजूद होती है जिसमें कई निशान और गोलाकार छल्ले और जड़ों की शुरुआत होती है। इस पौधे की खेती आसानी से प्रकंद टुकड़ों, के माध्यम से की जाती है और यह कार्बनिक, आंशिक छायादार और नम स्थितियों में अच्छी तरह से उगता है

प्रकंद व प्रकंद के उपयोग

प्रकंद बाजार में गोलाकार टुकड़ों में आते हैं जो खुरदरे लाल भूरे रंग के निशान से ढके होते हैं, जिनके अंदर कई निशान और गोलाकार छल्ले होते हैं जो सफेद और स्टार्चयुक्त होते हैं। इसकी गंध अत्यधिक कपूरयुक्त होती है और स्वाद तीखा कड़वा और सुगंधित होता है। स्थानीय लोग इसके प्रकन्दों को काटकर सुखाने के बाद माला बनाकर घर पर रखते हैं।

इसके प्रकंदों का च्यवनप्राश नामक खाद्य पूरक, व चंद्रप्रभा वटी जैसी दवाइयां बनाने में भी किया जाता है। इसके प्रकंदो को महिलाओं को बच्चे के जन्म के पश्चात दिया जाता है ये वातनाषक होते हैं व नवजात शिशुओं के लिए इसके प्रकंदों से घुट्टी बनाई जाती हैं, व इसके प्रकंदों को तेल में उबाल कर माँ व शिशु की मालिश के लिए भी उपयोग किया जाता है। यह शरीर को गर्माहट देता है व दर्द में आराम मिलता है।

दस्त, यकृत संबंधी समस्याओं, दर्द, उल्टी, सूजन, मतली जैसी कई बीमारियों में इसके प्रकंदों को पानी में उबालकर काढ़ा बनाया जाता है।

श्वसन संबंधी विकार, बुखार, जुखाम, गलादर्द, सिरदर्द में इसके प्रकद को भूनकर खाया जाता है जिससे इन विकारों में आराम मिलता है।

इसके प्रकंद का उपयोग रक्त शोधक के रूप मे

गठिया के दर्द, जोड़ों के दर्द के इलाज में भी किया जाता है।

इसके प्रकंदों का अदरक के साथ चूरन बना कर पेट दर्द व गठिया के उपचार में उपयोग किया जाता है।

इसके प्रकंदों को अदरक, बनकशा के साथ उबाल कर काढ़ा बनाया जाता है जो जुखाम के लिए लाभप्रद होता है।

इसके प्रकंदों को भूनकर खाने से सिरदर्द में आराम मिलता है।

अवैध कटाई और विभिन्न प्रकार की औषधियाँ बनाने में इसके प्रकंद अर्क के अंधाधुंध दोहन के कारण इस प्रजाति का प्राकृतिक रोपण कम हो गया है। इस पौधे को इसके प्राकृतिक आवास में पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है। इसलिए, बड़े पैमाने पर इस प्रजाति के उचित प्रसार और खेती की योजना बनाने की आवश्यकता है।

****

उच्च हिमालयी क्षेत्रों में ताप की चुनौतियों का समाधानः पैसिव सौर तापित आवास

अभिलाष ठाकुर, राकेश कुमार सिंह, केसर चन्द
गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र मौहल, कुल्लू,

भूमिका

स्पीति, हिमाचल प्रदेश का एक ठंडा मरुस्थलीय क्षेत्र, समुद्र तल से 3,808 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है, जहाँ सालाना 12–40 मि0 मी0 वर्षा और सर्दियों में 2 मीटर तक बर्फबारी होती है। तापमान, 26°C से –22°C तक रहता है, लेकिन 300 से अधिक दिन धूप खिली रहती है और औसतन 8–12 घंटे धूप रहती है। नासा और एनआरईएल के आंकड़ों के अनुसार, स्पीति में औसत सौर विकिरण 5.80 (kWh/m2/day) है, जो पैसिव सौर तापित आवास के लिए अनुकूल है, और इस क्षेत्र में सौर ऊर्जा की क्षमता को दर्शाता है। स्पीति के लोग सर्दियों में गर्मी के लिए लकड़ी, बिजली और ईंधन पर निर्भर हैं, जो महंगा है। पैसिव सौर तापित भवन अपनाने से तापीय लागत 10–30% तक कम हो सकती है, क्योंकि ये भवन सूर्य की प्राकृतिक ऊष्मा से तापीय आराम प्रदान करते हैं। इससे न केवल ऊर्जा दक्षता में सुधार होगा, बल्कि पर्यावरण पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य स्पीति घाटी में पैसिव सौर तापित आवास की प्रभावशीलता का विश्लेषण करना है। प्रश्नावली, जलवायु आंकड़ों और लागत विश्लेषण के जरिए पारंपरिक आवास तकनीकों के महत्व और उनकी तापीय आराम प्रदान करने की क्षमता का आकलन करना है। शोध यह भी जांचता है कि पारंपरिक घरों की निर्माण सामग्री और वास्तुशिल्प कैसे सर्दियों और शुष्क जलवायु के अनुकूल होते हैं, साथ ही आधुनिक भवनों में टिकाऊ और जलवायु–अनुकूल डिजाइन के लिए इन तकनीकों का उपयोग कैसे किया जा सकता है।

स्पीति घाटी की पारंपरिक वास्तुकला

स्पीति घाटी की पारंपरिक वास्तुकला कठोर पहाड़ी जलवायु का सामना करने के लिए विकसित हुई है। यहाँ के घर अत्यधिक तापमान, भारी बर्फबारी, और ऊँचाई के अनुकूल बनाए गए हैं। ये इमारतें बौद्ध–प्रभावित निर्माण प्रथाओं पर आधारित हैं, जिनमें मिट्टी के दो मंजिला घर, चपटी मिट्टी की छतें, रैमड अर्थ संरचना, और लकड़ी–पत्थर का संयोजन शामिल है। स्पीति के 23 गाँव की वास्तुकला के एक दस्तावेजीकरण के अध्ययन मे यह पाया गया कि 88.6% इमारतें मिट्टी–पत्थर से बनी हैं, 89.36% घर दक्षिण की ओर उन्मुख हैं और 93.45% भवन दो मंजिला हैं। मोटी दीवारें और छोटी खिड़कियाँ भी हैं, यह सभी जलवायु के अनुसार अनुकूलन और संसाधनों के कुशल उपयोग को दर्शाती हैं।

स्पीति घाटी की पारंपरिक वास्तुकला

स्पीति में पैसिव सौर तापित भवन

पैसिव सौर तापित भवन डिजाइन सूर्य की ऊर्जा का अधिकतम उपयोग करता है, बिना किसी यांत्रिक या विद्युत प्रणालियों के। यह स्पीति घाटी जैसी ठंडी जलवायु के लिए उपयुक्त है। अध्ययन में पाया गया कि 98.29% लोग इसे अपनाना चाहते हैं, और 97.91% लोग, जो ऐसे भवनों में रहते हैं, उन्होंने इसे आरामदायक माना। हालांकि, भारी वर्षा और भूकंप में सुरक्षा सीमित है, फिर भी 80% से अधिक लोग इन आवासों से संतुष्ट हैं। निष्क्रिय सौर तापित भवन डिजाइन न केवल ऊर्जा की बचत करते हैं, बल्कि पर्यावरण–अनुकूल और आर्थिक रूप से भी फायदेमंद होते हैं, जिससे यह संधारणीय विकास और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम बन जाता है।

स्पीति घाटी में पैसिव सौर तापित भवन

तालिका–1 स्पीति घाटी में पारंपरिक आवास और पैसिव सौर तापित तकनीकों के डिजाइन के सिद्धांत और कार्यप्रणाली

क्रमांक	सिद्धांत	सौर तापित कार्यप्रणाली	स्पीति में पैसिव तापित तकनीक
1	अभिविन्यास	भवन को इस तरह से उन्मुख करना कि वह दिन के दौरान अधिकतम सौर ऊर्जा प्राप्त कर सके, जैसे कि उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिण की ओर उन्मुखीकरण।	अधिकांश पारंपरिक घर दक्षिण की ओर उन्मुख होते हैं।

2	ग्लेजिंग	खिड़कियों में विशेष प्रकार के शीशे का उपयोग जो सौर विकिरण को अंदर आने देता है लेकिन गर्मी को बाहर नहीं जाने देता, जैसे दोहरी या तिहरी ग्लेजिंग वाली खिडकियाँ।	पारंपरिक घरों में दोहरी ग्लेजिंग वाली खिड़कियाँ हैं। 57.17% घरों में दोहरी ग्लेजिंग खिडकियाँ है
3	तापन द्रव्यमान	पत्थर, ईंट, कंक्रीट जैसी सामग्री का उपयोग जो दिन के दौरान सौर ऊर्जा को अवशोषित करती हैं और रात में इसे धीरे–धीरे छोड़ती हैं, जिससे भवन का तापमान स्थिर रहता है।	रैमड अर्थ और मिट्टी–पत्थर जैसी सामग्रियों का उपयोग।
4	स्थान का चयन	भवन का स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ अधिकतम धूप मिल सके और ठंडी हवाओं से सुरक्षा हो, जैसे पहाड़ियों के दक्षिणी ढलानों पर और छाया रहित स्थान।	पारंपरिक घर पहाड़ियों के दक्षिणी ढलानों पर बनाए जाते हैं।
5	अवशोषक	गहरे रंग की सतह जो सौर विकिरण को अवशोषित कर ऊष्मा में परिवर्तित करती है, जैसे दीवारें और फर्श।	दीवारें और फर्श गहरे रंग के होते हैं।
6	तापावरोधन	ऊष्मा के नुकसान को कम करने के लिए तापावरोधक सामग्री का उपयोग, जैसे फाइबरग्लास, फोम, या ऊन, जो दीवारों, छतों, और फर्श में लगाया जाता है।	पारंपरिक घरों में मोटी दीवारें और छतें होती हैं, और कमरों की औसतन ऊँचाई 7–8 फीट है जिससे ऊर्जा वितरण में मदद मिलती है।
7	नियंत्रण	शेड्स, ब्लाइंड्स, या ओवरहैंग का उपयोग जो गर्मी के मौसम में अत्यधिक सौर ऊर्जा के प्रवेश को रोकता है और सर्दियों में सौर ऊर्जा का पूरा लाभ उठाता है, जिससे घर के अंदर का तापमान बना रहता है।	छाया के लिए ओवरहैंग्स और शेड्स का उपयोग।

निष्कर्ष

यह अध्ययन स्पीति घाटी में पैसिव सौर तापित आवासों की स्थिरता और पर्यावरण–अनुकूलता को उजागर करता है। स्वदेशी ज्ञान, स्थानीय सामग्री और पैसिव सौर प्रणाली के सिद्धांतों का उपयोग करते हुए, ये पारंपरिक घर कठोर जलवायु में एक टिकाऊ समाधान प्रदान करते हैं। पैसिव सौर आवास को ऊर्जा दक्षता और पर्यावरणीय स्थिरता में बढ़ावा देने की महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में स्थापित किया गया है। हिमाचल प्रदेश सरकार ने वर्ष 2009 में पैसिव सौर आवास नीति बनाई और इसे 2014 के टाउन एंड कंट्रीप्लानिंग नियमों में शामिल किया, जिससे यह राज्य भर में लागू हुआ। यह पहल अन्य हिमालयी क्षेत्रों के लिए प्रेरणादायक है, जो समान नीतियों को अपना कर ऊर्जा–कुशल आवासों को बढ़ावा दे सकते हैं। इस तरह के उपायों से भारत के हिमालयी क्षेत्रों को ऊर्जा–कुशल और पर्यावरण के अनुकूल बनाते हुए संधारणीय विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान दिया जा सकता है।

*****

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यानः हिमालयी जैवविविधता और औषधीय संपदा

सुनील दत्त, डॉ. शेर सिंह सामंत व डॉ. ललित मोहन तिवारी

गोविन्द वल्लभ पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल इकाई, मौहल, कुल्लू हिमाचल प्रदेश वनस्पति विज्ञान विभाग,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल उत्तराखंड

परिचय

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले में स्थित एक अत्यंत महत्वपूर्ण जैवविविधता स्थल है। यह उद्यान हिमालय की गोद मे स्थित है और इसकी ऊँचाई 2800 मीटर से 4500 मीटर तक विस्तृत है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां की प्राकृतिक सुंदरता, जैवविविधता, और औषधीय पौधों ने इसे एक अद्वितीय पारिस्थितिकी तंत्र बना दिया है। इस उद्यान का क्षेत्रफल 104 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है और यह अपनी समृद्ध वनस्पतियों, वन्य जीवों, और औषधीय पौधों की विविधता के साथ–साथ पर्यटन के लिए भी प्रसिद्ध है।

भौगोलिक स्थिति और जलवायु

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान पश्चिमी हिमालय के उच्च पर्वतीय क्षेत्रों मे स्थित है। यहां की जलवायु में मौसमी परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। गर्मियो मे यहां का तापमान 15–20 डिग्री सेल्सियस तक रहता है जबकि सर्दियों मे यह शून्य से भी नीचे चला जाता है। इस उद्यान की भू–आकृति मे बर्फ से ढके पर्वत, गहरी घाटियाँ, और घने जंगल शामिल हैं, जो इसे जैवविविधता के अध्ययन और पर्यटकों के लिए एक आकर्षण का केंद्र बनाते हैं।

वनस्पतियों की विविधता

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान अपने समृद्ध पौधों की विविधता के लिए प्रसिद्ध है। यहां पर मिलने वाली वनस्पतियों में प्रमुख रूप से उच्च ढलानों में पाई जाने वाली झाडियों में शर्गल, बेठर व कुजा तथा पेड़ों में रखाल, रई, तोश, भोजपत्र, और खर्षु (ओक) के वृक्ष शामिल हैं। इसके साथ ही यहां उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पाई जाने वाली कई औषधियां और जड़ी–बूटियाँ भी मिलती हैं, जिनमें कड़ू, पंजा, अतीस, पतिष, चोरा, चुच्वी, नागछतरी आदि शामिल हैं। इन औषधीय पौधों का आयुर्वेदिक, पारंपरिक और तिब्बती चिकित्सा में महत्वपूर्ण स्थान है।

जीव–जंतुओं की विविधता

इस उद्यान मे विभिन्न प्रकार के जंगली जानवर और पक्षी भी पाए जाते हैं। हिमालयी काला भालू, भूरा भालू, तेंदुआ, जैसी दुर्लभ और लुप्त प्राय प्रजातियाँ यहां देखी जा सकती है। पक्षियों मे मोनाल तीतर, काले तीतर, हिमालय नग्रिफॉन, और सुनहरी चील शामिल हैं। यह राष्ट्रीय उद्यान इन जीवों के संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान है और यहां की पारिस्थितिकी में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

पर्यटन की संभावनाएँ

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान प्राकृतिक सुंदरता, रोमांचक ट्रेकिंग मार्गों, हामटा पास और अद्वितीय जैवविविधता के कारण पर्यटकों के लिए एक आकर्षण का केंद्र है। उद्यान के अंदर कई ट्रेकिंग मार्ग हैं जो पर्यटकों को हिमालय की ऊँचाईयों और घने जंगलों की सैर करने का अवसर देते हैं। गर्मियों में यहां हरे–भरे घास के मैदान, फूलों से सजी घाटियाँ, और बर्फ से ढके पहाड़ पर्यटकों को अद्भुत दृश्य प्रदान करते हैं। इसके अलावा, शीतकाल में पर्यटक यहां आकर बर्फ से ढके क्षेत्रों का आनंद ले सकते हैं। हिमालय के जीव–जंतुओं और पक्षियों को देखने के लिए वन्यजीव प्रेमियों के लिए यह एक उत्कृष्ट स्थल है।

पर्यटन के लाभ और चुनौतियाँ

उद्यान में पर्यटन से स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि पर्यटक स्थानीय होटलों, गाइड, और हस्तशिल्प उत्पादों का उपयोग करते हैं। इसके अलावा, पर्यटक क्षेत्र की जैव विविधता, सांस्कृतिक धरोहर, और पारंपरिक ज्ञान के प्रति जागरूक होते हैं। हालांकि, बढ़ते पर्यटक दबाव से पारिस्थितिकीय असंतुलन, कचरा प्रबंधन, और वन्यजीवों के लिए खतरे की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए, संधारणीय पर्यटन प्रथाओं और स्थानीय समुदायों की भागीदारी से पर्यावरण ीय संरक्षण को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

संरक्षण और प्रबंधन

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान की जैवविविधता और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए कई कदम उठाए गए हैं। वन विभाग द्वारा यहां के पौधों और जीवों के संरक्षण के लिए विशेष योजनाएँ बनाई गई हैं। इसके साथ ही, स्थानीय समुदायों को भी इस उद्यान के संरक्षण और प्रबंधन में शामिल किया गया है। औषधीय पौधों की प्रजातियों को संरक्षित करने के लिए स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर कार्य करना आवश्यक है ताकि उनके पारंपरिक ज्ञान और संसाधनों का सतत उपयोग सुनिश्चित किया जा सके।

चुनौतियाँ और समाधान

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिनमें अवैध शिकार, औषधीय पौधों की अंधाधुंध कटाई, जलवायु परिवर्तन, और पर्यावरणीय असंतुलन शामिल हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों को मिलकर काम करना होगा। स्थानीय समुदायों की सहभागिता, जागरूकता कार्यक्रम, और वैकल्पिक आजीविका के साधनों की व्यवस्था से इन समस्याओं को कम किया जा सकता है। इसके अलावा, औषधीय पौधों के संरक्षण के लिए हरित कृषि और जैविक खेती को बढ़ावा देना भी आवश्यक है।

निष्कर्ष

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान न केवल हिमाचल प्रदेश की जैव विविधता का प्रतीक है, बल्कि यह हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र की समृद्धि का एक महत्वपूर्ण उदाहरण भी है। यहां की जैव विविधता, औषधीय पौधों की प्रजातियाँ, और प्राकृतिक सौंदर्य, हिमाचल प्रदेश और पूरे भारत के पर्यटन और पारंपरिक चिकित्सा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके संरक्षण, सतत प्रबंधन, और पर्यटकों की भागीदारी से इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान की समृद्धि और इसकी जैवविविधता को बनाए रखना हमारा कर्तव्य है ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस अद्वितीय धरोहर का अनुभव कर सकें।

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान के मार्ग में सेथन गाँव के समीप पवित्र पांडू रोपा नामक स्थल

इंद्रकिला राष्ट्रीय उद्यान के ऊंचाई पर चारागाह से लिया गया चित्र

******

बदलते भारत के गाँवः पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में

डॉ० खुर्शीद आलम खान
वैज्ञानिक–सी, उप निदेशक, उप–कार्यालय, जम्मू
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय,

मानव के उद्‌भव से लेकर वर्तमान समय तक मानव का सांस्कृतिक विकास विभिन्न सोपानों में हुआ है। मानव सभ्यता वैदिक काल मे अकेले रहने से लेकर आधुनिक सभ्यता तक विभिन्न आयामों से होकर गुजरी है। उत्पत्ति के हिसाब से मानव का विकास जटिल एवं लंबी प्रक्रियाओं से हुआ है जिसमें पर्यावरण, भूकंप एवं जलवायु परिवर्तन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है और मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेकों प्रकार के आविष्कार किए जिसने मानव जीवन को सुगम बनाया। इसके अलावा समय के साथ मानव ने जीवनयापन के लिए अन्य सामाजिक एवं तकनीकी सुधार भी किए।

मानव सभ्यता संस्कृति के साथ ही विकसित हुई है। जैसे–जैसे मानव संस्कृति का विकास हुआ मानव सभ्यता भी सरल से जटिल होती गई है। मानव अपने शुरुआती दिनों में विभिन्न प्रकार की समस्याओं से दो चार होता रहा लेकिन उसके द्वारा किए गए नित नए आविष्कारों ने मनुष्य को जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान ढूंढ निकालने में मदद की।

भारतीय संस्कृति को आरण्यक संस्कृति कहा जाता है और भारतीय संस्कृति वैदिक काल से ही पर्यावरण संरक्षण को आत्मसात किए हुए है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को वैदिक काल से ही अत्यधिक महत्व दिया गया है। वेदों में कहा गया है कि मनुष्य शरीर पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु जैसे पांच तत्वों से निर्मित है। यदि इनमें से एक भी तत्व दूषित होता है तो इसका मानव जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक शक्तियों जैसे पर्यावरण के कई घटकों को पवित्र माना गया है और उनकी पूजा की जाती है जैसे, पीपल, बट, तुलसी, अग्नि, जल, वायु, समुद्र, नदियां एवं धरती को माता का दर्जा दिया गया है। हमारे पूर्वजों ने हमें पशु–पक्षियों का भी आदर करना सिखाया है। जल संरक्षण के लिए सरोवर, तालाब, कुएं का निर्माण कराया जाता रहा है।

परंतु आधुनिक विकास की होड़ ने मनुष्य को मशीनों की लाइन में ला खड़ा किया है।

आधुनिकीकरण की यह नीव ब्रिटिश साम्राज्य के उदय के साथ पड़ी तथा अंग्रेजों ने अपने आर्थिक लाभ के लिए पर्यावरण को नष्ट करने का कार्य प्रारंभ किया उनकी विनाशकारी दोहन नीतियों एवं औद्योगिकीकरण के कारण पर्यावरण असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई। स्वतंत्र भारत के लोग अगर किसी सभ्यता से सबसे ज्यादा प्रभावित हुए तो वो थी पश्चिमी सभ्यता और इसका अनुसरण ज्यादातर शहरी आबादी कर रही थी। इन सब परिस्थितिओं के बाद भी भारत के गाँव विकास के नाम पर किए जाने वाले कार्यों से कुछ खास प्रभावित नहीं हुए। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, जनसंख्या विस्फोट, पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण एवं लालच ने विभिन्न प्रकार के प्रदूषण को जन्म दिया जिससे भारत के गाँव भी अछूते नहीं रह सके।

आजादी के वर्षों बाद भी भारत के गांव अपनी वैदिक संस्कृति के साथ पर्यावरण से भी सामाजिक संतुलन बनाए हुए थे, ग्रामीण जीवन प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर था खेती, पशुपालन, और वनोत्पाद ग्रामीण अर्थव्यवस्था के मुख्य स्तंभ थे। परंतु शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, बढ़ती जनसंख्या तथा लालच ने मनुष्य को विकास की अंधाधुंध दौड़ मे ला खड़ा किया। भारत के गांव संवहनीय विकास की राह पर थे एवं पर्यावरणीय पारिस्थितिकी से सामंजस्य बैठाए हुए थे, उदाहरण के तौर पर वर्षा जल संचयन के लिए प्रत्येक गांव में तालाब बने हुए थे जो कि जल संचय, जल शुद्धीकरण एवं भूजल पुनर्भरण का कार्य करते थे तथा तालाबों में संचय हुआ जल कृषि भूमि को सिंचित करने के उपयोग में आता था। इसके अलावा गांव के कुओं से पूरे गांव को पीने का पानी उपलब्ध होता था। घर में भरे हुए पीने योग्य शुद्ध पानी को लोग बहुत ही विवेकपूर्ण तरीके से खर्च करते थे। अनावश्यक पानी का उपयोग वर्जित था। प्रत्येक गांव में बगीचे थे जो कि हवा के शुद्धिकरण का कार्य करते थे गांव के आस–पास साप्ताहिक बाजार लगते थे जहां से लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुएं खरीदते थे। सामान रखने के लिए प्लास्टिक के स्थान पर कपड़े क थैले उपयोग किए जाते थे और ये थैले घरों में ही पुराने कपड़ों से तैयार किए जाते थे। प्रत्येक घर में गाय/भैंस होती थी जिनसे दूध लेने के अलावा उनके बछड़े हल जोतने के काम आते थे। घरों का बचा हुआ भोजन इन पशुओं को खिला दिया जाता था। जिनके घर गाय/भैंस नही थे उनके घरो से भी इस प्रकार के बचे हुए भोजन को एकत्र कर पशुओं को खिलाया जाता था जिस से गीले कचरे या रसोई से निकले कचरे का पूर्णतः उपयोग हो जाता था। घरो से निकले हुए कूडे एवं अन्य अपशिष्ट पदार्थ को खेतों में एकत्र किया जाता था जिसे गोबर या अन्य अपशिष्टों के साथ मिलाकर खेतों में डाल दिया जाता था जो कि उर्वरक का काम करते थे। रसोई में जलाई गई लकड़ी से निकलने वाली राख का उपयोग भी खेतों में किया जाता था। खेत की उर्वरता बनाए रखने के लिए फसल चक्रीकरण और गोबर खाद का उपयोग पारंपरिक रूप से किया जाता रहा है। लोग पशु पक्षियों के साथ भी सौहार्दपूर्ण माहौल मे रहते थे। **सतत विकास का ऐसा उदाहरण दुनिया के अन्य देशों में दुर्लभ है।** आजादी के बाद अपनी संस्कृति को सुदृढ़ एवं आधुनिकीकरण करने के बजाय हमारी सरकारों ने पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण किया जिसके परिणामस्वरूप हमारी वैदिक संस्कृति का दिन–प्रतिदिन ह्रास हुआ प्रदूषण ने विकराल रूप धारण कर लिया और हमें प्रदूषण के इस मुहाने पर ला खड़ा किया है जिससे मुक्त होना अब कठिन होता जा रहा है।

पर्यावरण संरक्षण वर्तमान में पूरे विश्व के सामने सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरा है, दुनिया के अन्य देशों के साथ–साथ भारत भी इस चुनौती से पार पाने के लिए अथक प्रयास कर रहा है। भारत के सामने जनसंख्या नियंत्रण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, कचरे का प्रबंधन, शुद्ध पानी की कमी, गिरते भूजल का स्तर, वनों के संरक्षण, वन्य जीव संरक्षण, जैव विविधता में कमी, भूमिक्षरण इत्यादि प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएं हैं। हालाँकि भारत सरकार द्वारा इस समस्या के समाधान के लिए कई सारे अधिनियम, नियम एवं दिशानिर्देश समय–समय पर बनाए गए हैं जिसका असर अब पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में दिखाई भी दे रहा है।

वर्तमान समय में भी भारत की ज्यादातर जनसंख्या गाँवों मे निवास करती है और आज भी अपनी पुरानी संस्कृति से जुडी हुई है। जिनके उत्थान

के लिए सरकार के अलग–अलग मंत्रालय की अलग–अलग योजनाएं भी हैं परंतु उनमें आपसी समन्वय की कमी है। वर्तमान समय में एकीकृत योजनाओं की जरूरत है जिनमें आधुनिकता के साथ–साथ पुरानी संस्कृति के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके। एकीकृत योजनाएं ऐसी हों जिनमें गावों का सर्वांगीण विकास भी हो और पर्यावरण संरक्षण भी। मॉडल गांव की परिकल्पना भी शायद इन्हीं बिंदुओं को ध्यान में रख कर की गई है। परंतु धरातल पर यह कहीं नजर नही आती। मॉडल गांव के विकास में शायद समय लगे पर अगर ऐसा हम कर पाए तो यह दुनिया के अन्य देशों के लिए एक उदाहरण होगा।

****

जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध जैव विविधता-एक प्राकृतिक सुरक्षा कवच

डॉ. मनोज कुमार शर्मा,
वैज्ञानिक–डी एवं प्रभारी
क्षेत्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, गंगटोक
नाज रिज़्वी, निदेशक
राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, नई दिल्ली

जैव विविधता

जैव विविधता प्रकृति की जैविक संपदा और समृद्धि का संपूर्ण स्वरूप है। जिसमें बड़े से बड़े और छोटे से छोटे, यहां तक कि आंखों से न दिखने वाले जीवाणु, सभी तरह के जीव, पेड़ पौधे, घास, पत्तियां तथा वनस्पति जगत का सब कुछ शामिल है। जीव जगत की इन अलग–अलग वनस्पतियों, प्राणियों एवं सूक्ष्म जीवों तथा कई तरह के रहस्यों और उनके एक दूसरे के संबंधों से ही जैव विविधता को समझा जा सकता है। लाखों तरह के इन जीवों की प्रत्येक प्रजाति के भीतर व्याप्त विविधता ही जीवन की निरंतरता के लिए आधार बनाती है। पृथ्वी पर व्याप्त जैव विविधता लगभग साढ़े चार अरब वर्षों के सतत विकास का परिणाम है। जैव विविधता को तीन स्तरों में विभाजित किया जाता है। आनुवांषिक विविधता, प्रजाति विविधता और पारिस्थितिक तंत्र विविधता। वानस्पतिक, प्राणी, कृषि, उद्यान, पालतू पशुओं, जलीय, सूक्ष्मजीव इत्यादि जैव विविधिता के विभिन्न घटक हैं।

जैव विविधता का महत्व

जैव विविधता की मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका है। जैव विविधता के बिना मानव जीवन असंभव है। जैव विविधता से विभिन्न प्रकार के लाभ जैसे भोजन, कपड़ा, लकड़ी, ईंधन तथा चारे की आवश्यकता की पूर्ति होती है। जैव विविधता कृषि पैदावार बढ़ाने के साथ–साथ रोग रोधी, कीट रोधी फसलों की किस्म के विकास में सहायक होती है। एक अनुमान के अनुसार, लगभग 30 प्रतिशत औषधि वानस्पतिक जैव विविधता से प्राप्त होती हैं। सर्पगंधा से रेसप्रिन नामक क्षार प्राप्त होता है जिसका उपयोग उच्च रक्तचाप के उपचार में किया जाता है। इसी प्रकार गुग्गल नामक पौधे से प्राप्त गोंद का उपयोग गठिया के इलाज में किया जाता है। जैव विविधता पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में सहायक होती है। प्रदूषको का विघटन तथा उनका अवशोषण कुछ पौधों की विशेषता होती है। पौधों की कुछ प्रजातियों में मृदा से भारी धातुओं जैसे तांबा, कैड्मीअम, मरकरी, क्रोमियम के अवशोषण तथा संचयन की क्षमता पाई जाती है। इन पौधों का उपयोग भारी धातुओं के निस्तारण मे किया जाता है। जैव विविधता पोषक चक्र को गतिमान रखने में सहायक होती है। वह पोषक तत्वों की मुख्य अवशोषक तथा स्रोत होती है। मृदा की सूक्ष्म जैव विविधता पौधो के मृत भाग तथा मृत जंतुओं को अवशोषित कर पोषक तत्वो को मृदा में मिला देती है, जिससे यह पोषक तत्व पुनः पौधों को प्राप्त होते हैं। जैव विविधता पारितंत्र को स्थिरता प्रदान कर पारिस्थितिकी संतुलन को बरकरार रखती है। पौधे तथा जंतु एक दूसरे से

खाद्य श्रृंखला तथा खाद्य जाल द्वारा जुड़े होते हैं। एक प्रजाति की विलुप्ति दूसरे के जीवन को प्रभावित करती है। जिसका परिणाम पारिस्थितिकी तंत्र का कमजोर होना है। समुद्र के किनारे खड़ी जैव विविधता संपन्न मैंग्रोव वन प्राकृतिक आपदाओं जैसे समुद्री तूफान तथा सुनामी के विरुद्ध ढाल का काम करते हैं।

जैव विविधता पर संकट

विश्व में तेजी से हो रहे औद्योगीकरण का प्रभाव जैव विविधता पर भी पड़ रहा है। इससे पृथ्वी पर उपस्थित कई प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और बहुत सी प्रजातियां विलुप्ति के कगार पर आ चुकी है। पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में इन प्रजातियों की मुख्य भूमिका होती है। उद्योग धंधों को विकसित करने के लिए वनों की कटाई, शहरीकरण, बांध बनाना और खनिजों का अत्यधिक दोहन किया गया है। इन गतिविधियों का प्रभाव जैव विविधता पर पड़ा और वहां की बहुत सी प्रजातियां नष्ट हो गईं। इसका प्रभाव वहां की दूसरी प्रजातियों पर भी पड़ा। जैव विविधता के नष्ट या संकटग्रस्त होने के बहुत से कारण है, जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार है: जीवों के प्रवास क्षेत्र का समाप्त होना, वनों का कम होना, वैश्विक जलवायु परिवर्तन, सुनियोजित विकास का ना होना, प्रदूषण के स्तर का बढ़ना इत्यादि।

जैव विविधता पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की गिरावट में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जलवायु परिवर्तन ने दुनिया भर में समुद्री, स्थलीय और मीठे पानी के पारिस्थितिकी तंत्र को बदल दिया है। इससे स्थानीय प्रजातियों की हानि, बीमारियों में वृद्धि, पौधों और जानवरों की बड़े पैमाने पर मृत्यु हुई है। प्रत्येक डिग्री तापमान में वृद्धि के साथ प्रजातियों के विलुप्त होने का संकट बढ़ गया है। कुल मिलाकर जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

जैव विविधता संरक्षण

जैव विविधता संरक्षण के दो प्रमुख तरीके हैं जिनमें जैव विविधता का संरक्षण किया जाता है:

इन–सीटू संरक्षण: भारत में कानूनी रूप से ऐसे क्षेत्रों को संरक्षित किया गया है जो विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण में सहायता करते है जिनमें राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण, संरक्षित जैव मंडल इत्यादि शामिल हैं। यहां जानवर अपने प्राकृतिक रहवास में रहते हैं और स्वतंत्र विचरण करते हैं। ऐसे क्षेत्रों में जानवरों के शोषण, शिकार और अन्य गतिविधियों पर प्रतिबंध है। इन क्षेत्रों में से कई आज लुप्तप्राय जानवरों को बचाने के लिए कार्य कर रहे हैं।

एक्स–सीटू संरक्षण: यह मुख्य रूप से एक मानव निर्मित तकनीक है, जिसमें लुप्तप्राय प्रजातियां आमतौर उनके प्राकृतिक आवास से दूर बाड़ों में रखी जाती है। उदाहरण के लिए, जूलोजिकल पार्क, वन्य जीव सफारी ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें जानवर एक क्षेत्र में बंधे होते हैं और उनका ध्यान रखा जाता है। बीज बैंक भी इसी का उदाहरण है।

जलवायु परिवर्तन को सीमित करने के लिए जैव विविधता की आवश्यकता

मानवीय गतिविधियों से ग्रीनहाउस गैसों का उत्पादन होता है, तो लगभग आधा उत्सर्जन वायुमंडल में रहता है, जबकि दूसरा आधा भूमि और महासागर द्वारा अवशोषित हो जाता है। यह पारिस्थितिकी तंत्र और जैव विविधता, प्राकृतिक कार्बन सिंक का कार्य करते है जो जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध प्राकृतिक सुरक्षा कवच हैं।

मानव और प्रकृति

वर्तमान समय में मानव प्रकृति और प्राकृतिक संसाधन व संपदा को केवल अपने भोग की वस्तु समझ रहा है। मानव को यह समझना होगा कि केवल मानवीय विकास से पृथ्वी अपने प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने में सक्षम नहीं है। हमारा पारिस्थितिक तंत्र हमारे विध्वंसक विकास से काफी हद तक प्रभावित हुआ है। हम अन्य जीवों के अस्तित्व को खतरे में डालकर अपना अस्तित्व मिटाने की ओर अग्रसर हैं। यदि मानव को पृथ्वी पर सुरक्षित व स्वस्थ रहना है, तो मानव होने का सर्वप्रथम कर्तव्य समझकर जैव विविधता संरक्षण पर हर हाल में अमल करना होगा। अन्यथा, वह दिन दूर नहीं जब पृथ्वी के अन्य वन्य जीवों की भांति मनुष्य भी विलुप्ति के कगार पर आ जाएगा।

जलवायु परिवर्तन के समाधान

जीवाश्म ईंधन के स्थान पर नवीनीकरण ऊर्जा का अधिक उपयोग, सार्वजनिक परिवहन का उपयोग, खेती में सुधार, शाकाहारी भोजन, अधिक कार्बन अवशोषित करने के लिए प्रकृति को पुनः बहाल करना, वनो की रक्षा, महासागरो की रक्षा इत्यादि जलवायु परिवर्तन के समाधान हैं।

******

अनिष्टकारक थ्रिप्स का कृषि एवं जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव

कौमुद त्यागी, शश पाल, देवांशु गुप्ता,
धृति बनर्जी एवं विकास कुमार

भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कोलकाता–700053,
भारत प्राणी विज्ञान विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू एवं कश्मीर

थ्रिप्स छोटे, मुलायम शरीर वाले कीड़े होते हैं जो कई तरह के पौधों को खाते हैं। "थ्रिप्स" शब्द थिसानोप्टेरा (थिसानोस: फ्रिंज प्टेरा: पंख) गण के सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व करता है। इन्हें निम्नलिखित लक्षणों द्वारा पहचाना जा सकता है: एक पीछे की ओर मुड़ा हुआ सिर, असममित मुखअंग (बाया जबड़ा मौजूद होता है और दाया जबड़ा रूण के विकास के दौरान खो जाता है) (अनंतकृश्णन, 1969, हेमिंग, 1993) या सभी पैरों पर टार्सी के शीर्ष पर एक प्रोट्रूसिबल संरचना की उपस्थिति, दो लार्वा और दो या तीन प्यूपा अवस्थाओं की उपस्थिति, तलवों के सहारे चलने की क्षमता (पलंटीग्रेट लॉकोमोसन) (माउंड और मारुलो, 1996), और पंखों के किनारे पर लंबे फ्रिंज की उपस्थिति थ्रिप्स पूर्ण कायांतरण वाले एक्सोप्टेरिगोट्स होते हैं। थ्रिप्स का आकार 0.5 से 15 मिमी तक होता है (प्रीसनर 1949) और ये पूरी दुनिया में व्यापक रूप से वितरित हैं। अब तक इनकी लगभग 7700 प्रजातियाँ ज्ञात हैं और ये मुख्य रूप से समशीतोष्ण, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती हैं। थिसानोप्टेरा गण को दो उपगणों टेरेब्रेनिया और ट्यूबुलिफेरा मे वर्गीकृत किया गया है जिसमें 9 परिवार हैं।

थ्रिप्स एक हानिकारक चूसने वाला कीट हैं और पादप टोस्पोवायरस (परिवार बुनीविरिडे) के वाहक हैं। लगभग 1% थ्रिप्स प्रमुख हानिकारक कीट हैं (माउंड और पामर, 1981) और भारत से 60 प्रजातियों की हानिकारक कीट के रूप में रिपोर्ट किया गया है (त्यागी और कुमार, 2017)। केवल 15 प्रजातियाँ ही विभिन्न कृषि और बागवानी फसलों पर टोस्पोवायरस को संचारित करने के लिए जिम्मेदार हैं (रिले एट अल., 2011) जिनमें से 6 भारत से रिपोर्ट की गई है। ये पौधे के रस को चूसते हैं, इसके लिए वे एपिडर्मिस की बाहरी परत को भेदते हैं, जिससे पत्तियाँ, फूलों और फलों की सतह पर दाग और निशान पड़ जाते हैं, जिससे कृषि उत्पादन को नुकसान होता है। फिर भी, कुछ थ्रिप्स जैविक नियंत्रण पहलों के लिए आवश्यक हैं क्योंकि वे घुन और अन्य कीटों का सेवन करते हैं। इसके अलावा, कुछ प्रजातियाँ पराग, माइसीलियम और बीजाणु खाती हैं। थ्रिप्स घास, फूल, पत्तियाँ, गाद, पत्ती का कूड़ा, पत्ती की थैली, छाल और सूखी टहनियों में रहते हैं। विश्व स्तर पर, थ्रिप्स कृषि फसलें की एक विस्तृत श्रृंखला पर महत्वपूर्ण आर्थिक नुकसान पहुंचाते हैं।

थ्रिप्स तीन प्राथमिक तरीकों से आर्थिक नुकसान में योगदान देते हैं। सबसे पहले, उनकी प्रत्यक्ष भक्षण गतिविधि फसल की गुणवत्ता को कम करती है, जो बाद में अंतरराष्ट्रीय निर्यात के अवसरों में बाधा डाल सकती है। दूसरा, थ्रिप्स टोस्पीवायरस के वाहक होते हैं, जो केवल एक सप्ताह में पूरी फसल को तबाह करने में सक्षम होते हैं।

टोस्पोवायरस के प्रकोप से दुनिया भर में होने वाले नुकसान का सालाना 1 बिलियन डॉलर से अधिक होने का अनुमान है (मंडल और जैन, 2012)। अंत में, फसल कटाई के बाद फलों और सब्जियों में थ्रिप्स की केवल उपस्थिति से निर्यात प्रतिबंध लग सकते हैं, जिससे आर्थिक प्रभाव और बढ़ जाते हैं।

भारत में, थ्रिप्स द्वारा संचारित टोस्पोवायरस की पांच प्रजातियां रिपोर्ट की गई हैं– वाटरमैलन बड नेक्रोसिस वायरस (डब्ल्यूबीएनवी), कैप्सीकम क्लोरोसिस वायरस (सीएसीवी), पीनट येलो स्पॉट वायरस (पीवाईएसवी), आईरिस येलो स्पॉट वायरस (आईवाईएसवी) और ग्राउन्डनट बड नेक्रोसिस वायरस (जीबीएनवी) और इनकी विभिन्न प्रकार की सब्जियों और खेत की फसलों को संक्रमित करने के रूप में पहचाना गया है (सिंह और कृष्णारेड्डी, 1996; रवि एट अल., 2005; शर्मा और कुलश्रेष्ठ, 2016)।

उदाहरण के लिए, ग्राउन्डनट बड नेक्रोसिस वायरस (जीबीएनवी) के कारण मूंगफली की फसल में 80% तक की उपज हानि होने का अनुमान है (दासगुप्ता एट अल., 2003), जबकि वाटरमैलन बड नेक्रोसिस वायरस (डब्ल्यूबीएनवी) के कारण तरबूज में 60 से 100% तक उपज हानि होने का अनुमान है (कृष्णारेड्डी और सिंह, 1993)। इसी तरह, पीनट येलो स्पॉट वायरस (पीवाईएसवी) मूंगफली में 90% तक की उपज की हानि करता है (सत्यनारायण एट अल., 1998), और आईरिस येलो स्पॉट वायरस (आईवाईएसवी) प्याज की फसलों में 30–70% तक उपज हानि का कारण बना है (रवि एट अल., 2005)।

भारत में कई व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण फसलों, जैसे नकदी फसलें, खाद्य फसलें, बागान फसलें और बागवानी फसलें, में टोस्पोवायरस संक्रमण से जुड़े लक्षण देखे गए हैं। ग्राउन्डनट बड नेक्रोसिस वायरस (जीबीएनवी) और वाटरमैलन बड नेक्रोसिस वायरस (डब्ल्यूबीएनवी) देश में सबसे अधिक आम और व्यापक रूप से फैले हुए टोस्पोवायरस हैं, जो दक्षिणी (कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल), पश्चिमी (महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात), उत्तरी (हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश) और पूर्वी (पश्चिम बंगाल, ओडिशा) भारत में फसलों को प्रभावित करते हैं।

आईरिस येलो स्पॉट वायरस (आईवाईएसवी) दक्षिणी (कर्नाटक, तमिलनाडु), पश्चिमी (महाराष्ट्र, गुजरात) और उत्तरी क्षेत्रों (उत्तर प्रदेश) में पाया गया है। दूसरी ओर, कैप्सिकम क्लोरोसिस वायरस (सीएसीवी) भारत के दक्षिणी, मध्य और उत्तरी भागों में प्रमुख है (कृष्णारेड्डी एट अल., 2008; कुंकलिकारे एट अल. 2010; शर्मा और कुलश्रेष्ठ, 2016)।

भारत में इन सूक्ष्म कीटों के कारण हुए नुकसान के कई उदाहरण दर्ज किए गए हैं। स्टेनचेटोथ्रिप्स जीनस को धान के पौधों के एक महत्वपूर्ण कीट के रूप में पहचाना गया है (पाठक और खान, 1994)। इसी तरह, काइरोथ्रिप्स जीनस की प्रजातियाँ अनाज और घास को नुकसान पहुंचाने के लिए जानी जाती है (पाठक और खान, 1994)। थ्रिप्स हवाईएनसिस, फ्रैंकलिनिएला शुल्त्जी और मेगालुरोथ्रिप्स एसपीपी. सहित विभिन्न प्रजातियों को पत्तियों, फलों और फूलों को नुकसान पहुंचाने में शामिल किया गया है। उत्तरी भारत में, मेगालुरोथ्रिप्स सुइटेटस को एक प्रमुख कीट के रूप में पहचाना जाता है जो दलहन फसल काजूस काजन को प्रभावित करता है (त्यागी और कुमार, 2017)।

दक्षिण भारत और सिक्किम में, रिपिफोरोथ्रिप्स कुएंटेटस और रेटिथ्रिप्स सीरियाकस नामक थ्रिप्स

एक महत्वपूर्ण बायोफ्यूल पौधे, जेट्रोफा एसपीपी को नुकसान पहुंचाने की सूचना मिली है (त्यागी और कुमार, 2017)। वर्ष 2015 में, भारत में पहली बार पपीते पर दक्षिण पूर्व एशियाई थ्रिप्स, थ्रिप्स पर्विसपिनस (कार्नी) की रिपोर्ट की गई। यह एक बहुभक्षी कीट है, जो बैंगन, मिर्च, आलू, प्याज, स्ट्रॉबेरी, कपास, लोबिया और डहलिया रोसा जैसे कई पौधों पर फैल गया है। पिछले दो वर्षों से दक्षिणी राज्यों में मिर्च की फसलों पर इसका गंभीर प्रकोप देखा गया है, जिससे पचास प्रतिशत से अधिक की हानि हुई है (सेठी एट अल., 2023)।

पश्चिमी फूल थ्रिप्स, फ्रॉकलिनिएला ऑक्सिडेंटलिस पेरगैंडे भी भारत में पाया गया है, जिससे दुनिया भर में भारी आर्थिक नुकसान हुआ है।

*****

पर्यावरणीय संकट और स्वस्थ भविष्य

अंकुश मित्रा, वरिष्ठ प्राणिविज्ञान सहायक,
भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कोलकाता

प्रकृति, यह धरती, मानवता की जीवनदायिनी शक्ति है। यह अद्भुत उपहार हमें जीवन की संजीवनी शक्ति प्रदान करता है, लेकिन इसके प्रति हमारी उपेक्षा और लापरवाही ने इसे संकट में डाल दिया है। आज का वातावरण एक ऐसे संकट की ओर बढ़ रहा है जो न केवल हमारे वर्तमान को प्रभावित कर रहा है, बल्कि भविष्य को भी खतरे में डाल रहा है।

पर्यावरण, हमारे जीवन की आधारशिला है। यह वायुमंडल, जल, मृदा, वनस्पति और जीवों का एक जटिल तंत्र है। पारिस्थितिकी, इस तंत्र के भीतर विभिन्न घटकों के बीच के जटिल और नाजुक संतुलन को समझने की प्रक्रिया है। जंगल, नदियाँ, पर्वत, जलवायु, और जीव–जंतु मिलकर एक पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं। यह संतुलन सभी घटकों के सामंजस्य पर निर्भर करता है। यदि एक तत्व में असंतुलन आता है, तो पूरे तंत्र पर इसका प्रभाव पड़ता है।

जलवायु परिवर्तन, वर्तमान समय का सबसे गंभीर संकट है। औद्योगीकरण और अंधाधुंध शहरीकरण ने ग्रीनहाउस गैसों का स्तर बढ़ा दिया है, जो वायुमंडल में ढाल का काम करती हैं और पृथ्वी की गर्मी को कैद करती हैं। इस बढ़ती गर्मी से ग्लेशियर पिघल रहे हैं, समुद्र का स्तर बढ़ रहा है, और मौसम के पैटर्न में असामान्य परिवर्तन हो रहे हैं। सूखा, बाढ़, और चरम मौसम की घटनाएँ इसकी परिणति हैं। जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने के लिए वैश्विक प्रयासों की आवश्यकता है, जिसमें सभी राष्ट्रों का सहयोग अनिवार्य है।

प्रदूषण, हमारे जीवन की गुणवत्ता को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। वायु, जल और मृदा प्रदूषण, सभी क्षेत्रों में विकृति ला रहा है। वायु प्रदूषण, विषैले तत्वों जैसे कि कार्बन मोनोऑक्साइड और सल्फर डाइऑक्साइड के कारण हो रहा है, जो हमारे स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। जल प्रदूषण ने नदियों और अन्य जल स्रोतों को विशाक्त बना दिया है, जिससे जल की गुणवत्ता गिर रही है और पानी की कमी हो रही है। मृदा प्रदूषण, रसायनों और कूड़े के कारण भूमि की उर्वरता को कम कर रहा है, जिससे कृषि उत्पादकता में गिरावट आ रही है। प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए हमें स्वच्छ ऊर्जा के स्रोतों का उपयोग करना होगा और सतत विकास की ओर बढ़ना होगा।

वन, पृथ्वी पर जीवन का अभिन्न हिस्सा है। ये न केवल ऑक्सीजन का स्रोत है, बल्कि वन्य जीवों का आवास भी है। वनों की अंधाधुंध कटाई और शहरीकरण ने इन महत्वपूर्ण संसाधनों को खतरे में डाल दिया है। इससे न केवल वन्य जीवों की प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं, बल्कि जैव विविधता भी प्रभावित हो रही है। हमें समझना होगा कि वनों और वन्य जीवों का संरक्षण केवल उनके अस्तित्व के लिए नहीं, बल्कि हमारे पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन के लिए भी आवश्यक है। वृक्षारोपण, वनीकरण, और वन्य जीव संरक्षण के कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना होगा।

पशु और पक्षी, हमारे पर्यावरण का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। वे पारिस्थितिकी तंत्र के विभिन्न हिस्सों में अपनी भूमिका निभाते हैं। पक्षी परागण में मदद करते हैं, जो वनस्पतियों की वृद्धि के लिए आवश्यक है, और जानवर खाद्य श्रृंखला में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनकी कमी से पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन आ सकता है। इसलिए, पशु और पक्षियों के संरक्षण के लिए जागरूकता फैलाना और उनके आवास की रक्षा करना आवश्यक है। वन्य जीवों के संरक्षण के लिए संरक्षित क्षेत्र और रेंज पर काम करना, वनों की अंधाधुंध कटाई को रोकना, और अवैध शिकार के खिलाफ सख्त कानूनी कदम उठाना आवश्यक है।

वर्तमान पर्यावरणीय संकट को हल करने के लिए हमें एक नई सोच और दृष्टिकोण की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, वानिकी और वन्य जीवों के संरक्षण के प्रति हमें संवेदनशीलता दिखानी होगी। हमें अपनी जीवनशैली में परिवर्तन करना होगा, नवीकरणीय ऊर्जा के स्रोतों को अपनाना होगा, और पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता फैलानी होगी। व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयासों से ही हम इस संकट का सामना कर सकते हैं और एक स्थायी भविष्य की ओर बढ़ सकते हैं।

हमें यह समझना होगा कि पर्यावरण की रक्षा करना केवल एक जिम्मेदारी नहीं, बल्कि हमारे जीवन की आवश्यक शर्त है। यह धरती केवल हमारे लिए नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी है। इसलिए, आइए, हम सभी मिलकर इस ध रती को एक हरा–भरा और स्वस्थ घर बनाने के लिए प्रयासरत रहें, ताकि हम और हमारी आने वाली पीढ़ियाँ इस प्राकृतिक सुंदरता का आनंद ले सकें। यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम इस पृथ्वी को बचाएँ और उसे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखें।

*****

अपने मकान के लिए किसी का घर उजाड़ रहे हम

अजय कुमार मिश्रा,
भारतीय प्राणि सर्वेक्षण (मुख्यालय),
कोलकता (प. बंगाल)

पर्यावरण, हमारी धरती का अभिन्न हिस्सा है, जो जीवन के लिए आवश्यक सभी संसाधनों को आधार प्रदान करता है। हालांकि, मनुष्य की गतिविधियाँ और विकास की दिशा ने पर्यावरण को गंभीर खतरे में डाल दिया है। यह लेख इस विषय पर प्रकाश डालेगा कि मनुष्य किस प्रकार पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है और उसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर जीवन की गुणवत्ता कैसे प्रभावित हो रही है।

1. वनों की अंधाधुंध कटाई

वन, पृथ्वी के सबसे महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्रों में से एक हैं। वे कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करते हैं, जलवायु को नियंत्रित करते हैं और कई जीवों का घर होते हैं। लेकिन वनों की अंधाधुंध कटाई, विशेषकर वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए, ने इन पारिस्थितिकी तंत्रों को गहरा नुकसान पहुंचाया है। वनों की कटाई से बायोडाइवर्सिटी में कमी आई है, जलवायु परिवर्तन को तेज किया गया है और मिट्टी की कटाव की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

2. जल प्रदूषण

जल जीवन का अभिन्न हिस्सा है, लेकिन उद्योगों और नगरों से निकलने वाले प्रदूषक तत्व नदियों और समुद्रों को गंदा कर रहे हैं। रासायनिक पदार्थ, प्लास्टिक कचरा, और अन्य अपशिष्ट जल स्रोतों में मिलकर जलीय जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। यह न केवल जलीय जीवों की प्रजातियों को संकट में डालता है, बल्कि मानव स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव डालता है, क्योंकि प्रदूषित जल का सेवन विभिन्न बीमारियों का कारण बनता है।

3. वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण, उद्योगों, वाहनों और कृषि गतिविधियों से उत्पन्न होने वाले हानिकारक गैसों और धूलकणों के कारण हो रहा है। वायुमंडल में अत्यधिक धुआं और ग्रीनहाउस गैसें, जैसे कि कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन, जलवायु परिवर्तन को बढ़ा रही हैं। इसके परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है, जिससे ग्लेशियर पिघल रहे हैं और समुद्र स्तर बढ़ रहा है, जो समुद्र तटीय क्षेत्रों में बाढ़ और तटवर्ती क्षेत्रों में मिट्टी के क्षरण को बढ़ा रहा है।

4. भूमि प्रदूषण

भूमि प्रदूषण, प्लास्टिक कचरा, रासायनिक खाद, और औद्योगिक अपशिष्ट के कारण हो रहा है। प्लास्टिक का उपयोग अत्यधिक बढ़ गया है, और यह जैविक रूप से विघटित नहीं होता, जिससे भूमि पर कचरे का ढेर लग जाता है। रासायनिक खाद और कीटनाशक मिट्टी की उर्वरता को घटाते हैं और सूक्ष्म जीवों की विविधता को प्रभावित करते हैं, जो कृषि उत्पादन को भी प्रभावित करता है।

5. जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन, वायुमंडलीय गैसों की वृद्धि और मानव गतिविधियों के कारण हो रहा है। वनों की कटाई, औद्योगिकीकरण और अत्यधिक ऊर्जा उपयोग के परिणामस्वरूप, ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ रही है। इससे वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है, जो मौसम की चरम स्थितियों, जैसे कि अत्यधिक गर्मी, ठंड, और असामान्य वर्षा को जन्म दे रही है। यह कृषि, जल संसाधनों और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है।

6. जीवों की प्रजातियों का विलुप्त होना

मानव गतिविधियाँ जैसे कि वन कटाई, शहरीकरण, और प्रदूषण, अनेक प्रजातियों के विलुप्त होने का कारण बन रही हैं। यह बायोडाइवर्सिटी की हानि का कारण बनता है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र का संतुलन बिगड़ता है। प्रजातियों की कमी से पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य श्रृंखला प्रभावित होती है, जो अंततः मानव जीवन को भी प्रभावित करता है।

निष्कर्ष

मनुष्य ने अपनी विकास यात्रा में पर्यावरण के प्रति सजगता की कमी दिखाई है, जिसके कारण प्रकृति और इसके संसाधनों को व्यापक नुकसान हुआ है। यह हमारे जीवन की गुणवत्ता और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक गंभीर चिंता का विषय है। इसलिए, आवश्यक है कि हम सभी मिलकर पर्यावरण की रक्षा के लिए ठोस कदम उठाएँ। यह जिम्मेदारी हमारी है कि हम सतत विकास की ओर बढ़ें, संसाधनों का समुचित उपयोग करें और प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखें। हमें यह समझना होगा कि मानव और प्रकृति के बीच एक सह–अस्तित्व का संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, ताकि हमारी धरती आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और स्वस्थ बनी रहे।

****

कैक्टस की विभिन्न प्रजातियाँ एवं उनका विवरण

डॉ. नवीन कुमार बौहरा
पॉल रोड जोधपुर (राज.)

कैक्टस गर्म शुष्क क्षेत्रों के सबसे विशिष्ट पौधे हैं। ये अपने विभिन्न रूपों की विविधता तथा विषम पारिस्थितिकी में पनपने की अपनी क्षमता के लिए उल्लेखनीय माने जाते हैं। कैक्टस का उपयोग मृदा अपरदन रोकने में, जीवित बाड़ के रूप में तथा अपनी अद्वितीय विशेषताओं के साथ एक वाणिज्यिक फसल के रूप में किया जाता है। कैक्टस को अधिक पानी की आवश्कता नहीं होती हैं तदनुसार, ये असामान्य बनावट एवं रूपात्मक विशेषताएँ प्रदर्शित करते हैं। कैक्टस को कई उपयोगी रासायनिक यौगिकों के रूप में जाना जाता है जिनमें पोषण और औषधीय गुण होते हैं। कैक्टस की विभिन्न जातियां एवं उनका विवरण इस प्रकार है:–

ओपन्शिया प्रजाति: यह एक झाड़ी जैसा कैक्टस 60 से.मी. से 1 मीटर ऊँचा, सपाट, अंडाकार जोड़ वाला लगभग 10 से.मी. चौड़ा एवं 15 से.मी. लम्बा होता है। इसके पुष्प लगभग 4.5 से.मी. आकार के, अन्दर से सुनहरे पीले रंग के, तंतुयुक्त एवं पीले परागकोष के होते हैं। इसके फल लगभग 4 से.मी. चौड़े एवं गोलाकार लाल बेरी होते हैं। बीज बड़ा, लाल–भूरे रंग का होता है।

आवास:– यह मैक्सिको डुंरगो, कोहुइला एवं चिहुआहुआ में पाया जाता है। इसका विशिष्ट नाम "मॉइक्रोडेसिस" है। कैक्टस उत्पादों का कोई भी संग्रह कुछ ओपन्शिया के बिना पूरा नहीं होता था। यद्यपि ये अपने आकार के कारण छोटे संग्रह के लिए अनुप्रयुक्त साबित हुए। कैक्टस संग्रहण मे कई प्रजातिया किसी भी संग्रह के लिए अलग स्थान रखती हैं। "ओपन्शिया माइक्रोडासिस" सबसे सुन्दर कैक्टस है जिसे "गोल्डन ओपन्शिया" के नाम से जाना जाता है जिसके सफेद या भूरे–लाल ग्लोकिड्स होता है। कैक्टस के संग्रहण में इसकी कई किस्में और रूप पाए जाते हैं इनमें सबसे प्रसिद्ध ओपन्शिया माइक्रोडेसिस वेरायटी एलबिसपिना है जिसमें सफेद–गुच्छों के रूप में ग्लोकिड्स होते हैं। इनके साथ छोटे जोड़ों वाली किस्म "मिनिमा" भी सम्मिलित है जो छोटे संग्रहण हेतु उपयुक्त है।

ओपन्शिया माइक्रोडेसिस की खेती समृद्ध, भारी मिट्टी में की जाती है। बढ़ती वृद्धि के साथ इसे पर्याप्त नमी, धूप एवं वेंटिलेशन की जरूरत होती है। सर्दियों में रोशनी, शुष्क वातावरण एवं 5 डिग्री से 8 डिग्री से. ग्रे. का तापमान उपयुक्त रहता है। यह आमतौर पर कलम (कटिंग) से तैयार होता है। कलमों को धूप में सुखाने के बाद लगभग 10 दिन बाद मिट्टी से भरे पर्याप्त आकार के गमलों में लगाया जाता है। जहाँ वे जल्द ही जड़ें जमा लेते हैं। विशेषज्ञ कैक्टस उत्पादों द्वारा इसे बीजो द्वारा उगाया जाता है।

जिम्नोकैलिसिपम बाल्डियानम स्पेग:– इसका तना गोलाकार, चपटा लगभग 7 से.मी. व्यास का तथा नीले–भूरे रंग का होता है। 9 से 10 रिबस को गहरे खांचे द्वारा ट्यूबरकल में विभाजित किया जाता है जिसमें 5 से 7 पतली रेडियल स्पाइन वाले गहरे ऐरोल्स होते हैं जो सीधे या तने की

ओर घुमावदार होते हैं। इसके काटे भूरे रंग के तथा आधार पर लाल रंग के होते हैं। पुष्प शीर्ष पर आते हैं तथा 3 से 4 से.मी. लम्बाई एवं बैंगनी रंग के होते हैं। इसमें परागकोश 6 पॉलियों वाले, वर्तिकाग्र सफेद–पीले रंग के होते हैं। अंडाशय लम्बा एवं विभाजित हो जाता है।

पर्यावासः– अर्जेन्टीना कैटामार्क प्रांत।

जिम्नोकैलिसियम बाल्डियानम को यह नाम 1905 में अर्जेन्टीना के वनस्पतिशास्त्री ''स्पेगाजिनी'' से मिला परन्तु लम्बे समय तक यह अज्ञात रहा। तीस के दशक बाद ए.वी. फ्रिक इसे कैटामार्का के पास के पहाड़ों से यूरोप लेकर आए तथा वे इसे ''जिम्नोकैल्सियम वैचुरी'' कहते थे। लगभग उसी समय प्रोफेसर बेर्डरमैन ने जर्मनी में लाल फूलों वाली अलग किस्म का वर्णन किया जिसे ''जिम्नोकैलिसियम सेंगुइनिफ्लोरम'' नाम दिया। उस समय कैक्टस उत्पादकों के बीच लाल गहरे रंग के फूल वाले कैक्टस सनसनी का कारण बने थे।

बैकबर्ग की खोज के बाद वाइन–लाल फूलों वाले एक और कैक्टस की खोज की गई जो कम दिखाई देती थी। इस प्रकार ''जिम्नोकैविसियम बाल्डियानम'' पंसदीदा कैक्टस बना रहा है। इसकी खेती करना मुश्किल नहीं है परन्तु लगातार सूखे एवं सीधे धूप के संपर्क में रखने से पादप की खुराक कम हो जाती है। सर्दियों में इसे शुष्क एवं ठंडे वातावरण की आवश्यकता होती है। इसे बीजों से प्रवर्धित करना उचित रहता है।

एलो वेरीएगाटाः– ऐलोवेरीगेटा ऊपर की ओर बढ़ती पत्तियों के साथ 30 से.मी. तक ऊँचे मोटे रोसेट बनाता है जो तीन पत्तियां तिकोनी, अंदर की ओर मुड़ी हुई तथा भूरे–हरे रंग की सफेद दाग के साथ 12 से.मी. या अधिक लम्बाई की एवं 3.5 से.मी. चौड़ी होती है। इसके पुष्प रेसीम पुष्पक्रम में 20 से 30 गहरे लाल या लाल–बैंगनी रंग के हरे किनारे वाले होते हैं इसके बड़े पौधों में हर वर्ष बंसत एवं गर्मियों में 3 से 6 बार पुष्पित होते हैं।

पर्यावासः– दक्षिण अफ्रीका, केप प्रान्त।

इसके विशिष्ट नाम वेरिएगाटा का अर्थ है ''भिन्न–भिन्न प्रकार का एलो वेरिएगाटा जिसे आमतौर पर ''बाज पंख'' या ''टाइगर एलों'' के रूप में जाना जाता है। यह सबसे व्यापक रूप से पसन्द किया जाने वाला है तथा इसकी खेती ''इचिनोप्सेस'' ''फाइलोफैक्टी म्यूटिमेग'' तथा ''सिलविया'' कम्पनी के बगीचों में दशकों से की जा रही है। इसकी सुन्दर, धब्बेदार पत्तियों और प्रचुर फूलों के साथ शरद ऋतु में पार्श्व प्ररोहो की प्रचुरता के कारण बहुत लोकप्रिय है। इसे आसानी से प्रवर्धित किया जा सकता है। आज एलो वेरिएगाटा बहुत लोकप्रिय, सजावटी पौधा है और बागवानी में बड़े पैमाने पर प्रयुक्त किया जाता है।

इसकी खेती भारी, समृद्ध मिट्टी और पर्याप्त रोशनी वाले स्थानों पर आसानी से की जाती है। यह सूर्य की सीधी रोशनी एवं लगातार नमी एवं ठंड को बर्दाश्त नहीं करता है। सर्दियों में इसकी जड़ें नष्ट होने लगती है तथा इसका प्रसार बीजों से आसानी से हो जाता है। इसके अंकुरों से 2–3 वर्षों के भीतर पुष्प आ जाते हैं।

यूफोर्निया ओबेसा हुक.एफ: यह गोलाकार से थोड़ा स्तंभाकार 8 से 10 से.मी. व्यास एवं 12 से.मी. ऊँचाई वाला, धूप में हल्का से गहरा रंग, लाल भूरी क्षैतिज धारियों वाला होता है। इसमें रिब्स चौड़ी एवं चपटी होती हैं। पुराने एवं आयातित पौधों के आधार पर भूरे रंग के धब्बे होते हैं। इसके पुष्प छोटे हैं।

पर्यावासः दक्षिण अफ्रीका केप प्रांत।

इसके विशिष्ट नाम ''ओबेसा'' का अर्थ है– वसा। इस पौधे के प्रथम नमूने 1897 में ''यूफोरबिया

मेलोफोर्मिस'' नाम से लंदन के ''क्यू'' (Kew) गार्डन में भेजे गए थे तथा वहाँ प्रोफेसर हूकर द्वारा वर्गीकृत कर 1903 में इसे ''यूफार्बिया ओबेसा'' के नाम से वर्णित किया गया। इसके सभी आयातित पादप समाप्त हो गए तथा बीजों से बेहतर रूप से अनुकूलित युवा पौधे उगाए गए, जिससे यह पादप दुर्लभ हो गया है। आज यह काफी व्यापक है तथा इसे चिकनी मिट्टी गर्म धूप वाली जगह, हल्की सिंचाई वाले क्षेत्रों में सूखी हुई मिट्टी में शरद ऋतु में 12 डिग्री से.ग्रे. तापक्रम में बीजों से प्रवर्धित किया जा सकता है। यह 3 से 4 साल बाद परिपक्वता प्राप्त करता है।

मामिलारिया हैनियाना वर्डः

यह गोलाकार कैक्टस 10 से.मी. व्यास तक के सिरों के बड़े गुच्छों का निर्माण करता है। इसके शीर्ष पर कुंद सफेद एवं हरे रंग के होते हैं। इसके एरोल्स छोटे, अण्डाकार छोटे सफेद रंग के होते हैं जो बाद में झड़ जाते हैं। रेडियल रीढ़ 20 से 30 सफेद बाल जैसी, लचीली, 5 से 15 मि.मी. लम्बी एवं लहरदार होती है। पुष्प मुकुट के पास उभरते हैं एवं एक माला बनाते हैं। ये फनल के आकार के 12–15 मि.मी. चौड़े, हरे–सफेद गले के साथ वाइन–लाल रंग के होते हैं। फल गुलाबी–लाल रग का बीज 1 मि.मी. लम्बा एव हल्के भूरे रग का होता है।

पर्यावासः– मैक्सिको–गुआनाजुआतो

''मार्मिलिया हैडनिआना'' जिसे ''ओल्ड लेडी'' के नाम से भी जाना है। मार्मिलेरिया की सबसे खूबसूरत प्रजातियों में यह एक है। युवावस्था में यह काफी हद तक ''बूढ़े आदमी'' कैक्टस सेफलोसेरियस सेमिलियस जैसा दिखता है। कल्चर द्वारा गिसेलाना और बेडरमैनियाना की किस्में भी उगाई जाती हैं जो अपने छोटे रोमों के कारण भिन्न प्रकार की होती हैं। इसके पुष्प मई के अंत में पुष्पमाला के रूप में निकलते हैं जिससे लम्बे सफेद रोमों की प्रजातियों में इसे उगाना तुलनात्मक रूप से आसान है यद्यपि शहरों के धूल भरे वातावरण में इसके रोम भूरे एवं लटके दिखते रहते हैं। विकास की अवधि के दौरान इसे गर्मी, नमी, धूप एवं स्वच्छ हवा की आवश्यकता होती है। सर्दियों में इसे रोशनी एवं ठंडे तथा शुष्क वातावरण की आवश्यकता होती है। इसे बीजों द्वारा आसानी से उगाया जा सकता है।

इकाइनोकैक्टस ग्रूसोनीः

इसका गोलाकार तना, सुनहरे पीले रंग का 1.3 मीटर तक ऊँचा एवं 80 से.मी. तक चौड़ा होता है। पौधे में गहरी खांचों के साथ लगभग 30 रिब्स होती हैं जिनमें 8 से 10 सीधे या थोड़े घुमावदार रेडियल स्पाइन होते हैं जिनकी लम्बाई लगभग 3 से.मी. होती है एक क्रॉस के रूप में व्यवस्थित चार केन्द्र रीढ़ अधिक मोटे 4 से 5 से.मी. लम्बे गोलाकार एवं हल्के पीले रंग के होते हैं। पुष्प एक वृत में 4–6 से.मी. लम्बे, 5 से.मी. चौड़े एवं पीले रंग के होते हैं। इसका बीज छोटा, गहरा 1.5 मि. मी. लम्बा होता है।

पर्यावासः– मैक्सिको सैन लुइस पौटोसी से हिडाल्गो तक।

इसका विशिष्ट नाम एक बड़े कैक्टस संग्रह के मालिक ''मैगडेबर्ग के एच. ग्रुसन'' के सम्मान में है। ''इकानोकैक्टस ग्रुसोनी'' एक लोकप्रिय सुनहरे रंग का कांटेदार कैक्टस है जो सभी में लोकप्रिय है। इसे बड़ी संख्या में यूरोप से आयात किया जाता है। यह पौष्टिक मिट्टी में तेजी से बढ़ता है। इसकी खेती करना आसान है। वृद्धि करते समय इसे पर्याप्त पानी एवं गर्मी की जरूरत होती है लेकिन इसे सूर्य की सीधी रोशनी से बचाने की

जरूरत होती है। सर्दियों में इसे प्रकाश की एवं अत्यधिक शुष्क होने पर पानी की जरूरत होती है। इसकी वृद्धि हेतु तापमान 8 डिग्री से.ग्रे. से 10 से.ग्रे. के बीच होना चाहिए। इसका प्रसार बीजों से आसानी से हो जाता है।

जिम्नोकैलिसियम डेंडाटम (एल. के. एट ओटो) क्रिक:

इसकी तना गोलाकार एवं बाद में स्तंभाकार हो जाता है। यह 5 से 15 से.मी. चौड़ा एवं 20 से. मी. तक ऊँचा होता है। इसकी त्वचा चमकदार पीली हरी होती है। इसमें रिब्स 5 से 8 एवं हल्के क्रॉस खांचे द्वारा विभाजित होती है। इसमें एरोल्स छोटे, हल्के भूरे रंग की होती है। इसमें रीढ़ हल्के भूरे, घुमावदार होते है जो आमतौर पर 5 होते हैं जिनकी लम्बाई 1 से 1.5 मि.मी. होती है। फल शीर्ष के पास उगते हैं तथा सफेद रंग के होते हैं। कुछ फल गुलाबी रंग के होते हैं।

आवास: दक्षिण ब्राजील या ऊरुग्वे।

इसके विशिष्ट नाम डेंडाटम का अर्थ नग्न है। इसे अक्सर "स्पाईडर कैक्टस" भी कहा जाता है। "जिम्नोकैलिसियम डैडेटम" 100 से अधिक वर्षों से ज्ञात है। इसका मूल पौधा 1825 में सेलो द्वारा दक्षिणी ब्राजील या ऊँरुग्वे से बर्लिन भेजा गया जहाँ 3 वर्ष पश्चात् इसका नाम "इचिनोकैक्टस डैनडेटम" रखा गया। 1845 में डॉ. फिफर ने इसे जीनस "जिम्नोकैलिसियम" में स्थानान्तरित कर दिया। आज संग्रहक "जिम्नोकैलिसियम डेनडेटम" की 2 प्रजातियां उगाते हैं जिनमें दूसरी प्रजाति छोटे प्रकार की हैं जिसे बैकबर्ग द्वारा दक्षिण ब्राजील से यूरोप लाया गया था।

दोनों प्रकार बहुत सुन्दर है तथा सम्पूर्ण ग्रीष्म ऋतु में इनमें प्रचुर मात्रा में फूल आते हैं तथा इनकी देखभाल की आवश्यकता कम पड़ती है। इन्हें सीधे धूप से बचाना चाहिए। इनकी खेती समृद्ध छिद्रपूर्ण मिट्टी में की जाती है तथा विकास अवधि के दौरान पर्याप्त पानी/सिंचाई की जाती है। इनका प्रसार बीजों से अथवा पौधों से अलग किए गए अंकुरों से होता है।

जिम्नोकैलिरियम डैनुडेटम:–सी.बी. जेन सुबा पात।

यह नई संकर प्रजाति सी. बैकबर्ग द्वारा रियो ग्रांडे डी सुल से लाए गए सफेद फूल वाले जिम्नोकैलिसियम डैन्यूडेटम एवं लाल फूल वाले **"जिम्नाकैलिसियम बान्डियानम"** के बीच एक संकर है जो तने के आकार में स्पष्ट रूप से भिन्न है कई वर्षों तक क्रॉस ब्रीडिंग के असफल प्रयासों के बाद मूल पौधों में से एक बड़े लाल बीज के साथ एक अंडाशय का उत्पादन के साथ अंकुरण हुआ। बड़े अंकुर मूल पौधे "जिम्नोकैलिसियम डैन्यूडेटम" से मिलते जुलते थे तथा तीसरे वर्ष में बड़े गुलाबी फूल उग आए जिसमें कृत्रिम परागण के बिना अंकुरित बीजों के साथ बड़े अंडाशय वाले पौधे तैयार हुए। अगली पीढ़ी में सफेद से लेकर कैरमाइन लाल तक रंग वाले पुष्पों से सुसज्जित पौधे बने। वर्तमान में उपलब्ध प्रजातियां स्व परागण और रोग तथा कीटों के प्रति प्रतिरोधी पाई गई है। इसकी खेती अच्छी पौष्टिक एवं छिद्रपूर्ण मिट्टी में बढ़ती अवधि के दौरान पर्याप्त सिंचाई के साथ की जाती है तथा इसे सीधी धूप से दूर रखा जाता है। इसे बीजों द्वारा आसानी से उगाया जा सकता है।

जिम्नोकैलिरियम गिब्बोसम (हो.) फ्रिफ:

यह युवावस्था में गोलाकार होता है तथा 15 से. मी. चौड़ा तथा 20 से.मी. की ऊँचाई तक पहुंच जाता है। उम्र के साथ स्तंभाकार हो जाता है। इसकी त्वचा नीली–हरी तथा आधार पर रखी

होती है। इसमें 12–19 रिब्स तथा 1.5 से.मी. ऊँचे ट्यूबरकल होते हैं। इसमें कांटे सीधे या थोड़े घुमावदार, हल्के भूरे तथा बाद में भूरे रंग के होते हैं। इसमें 7 से 10 रेडियल स्पाइन तिरछी मिलती है। इसके पुष्प 6 से.मी. लम्बे, कीप के आकार के सफेद रंग के होते हैं। इसके तंतु सफेद होते हैं एवं परागकोश हल्के पीले रंग के होते हैं। इसके 12 पालियों वाला, सफेद वर्तिकाग्र तथा गहरे हरे रंग के बीज होते हैं।

पर्यावासः–दक्षिण अर्जेन्टीना

इसका विशिष्ट नाम गिब्बोसम का अर्थ है ढेलेदार "जिम्नोकैलिसियम गिब्बोसम" को 120 से अधिक वर्षों से सामान्य नाम "जिम्नोकैलिसियम" से जाना जाता है। यह अर्जेन्टीना में व्यापक है तथा इसकी अनेक किस्में हैं। सबसे प्रसिद्ध वेरायटी नाइग्रम, 6 से 7 मजबूत काली कांटों के साथ काले–हरे रंग की होती है। वेरायटी नोबिलिस 20 से.मी. व्यास एवं 20 सफेद कांटों वाली प्यारी एवं दुर्लभ वेरायटी है। इसके अतिरिक्त फेरॉक्स, फैनेल्ली और कैस्पिटोसम कम व्यापक वेरायटी है। ये सभी सुंदर एवं फायदेमंद पौधे हैं, जो ठंड के प्रति प्रतिरोधी हैं तथा प्रतिकूल पारिस्थितियों में भी विकसित हो सकते हैं। तेजी से बढ़ने एवं फूल देने हेतु इनकी ग्राफ्ट द्वारा खेती की जाती है। 3–4 पुराने पौधों में सफेद बड़े आकार के फूल आते हैं। इसमें स्वपरागण होता है तथा इस प्रकार संकरण के खतरे को दूर करते हैं।

जिम्नोकैलिसियम फाइड्रिची (वर्ड) पाजः

इसकी 8 तीव्र रिब्स वाला छोटा तना, 5–6 से. मी. की ऊंचाई एवं व्यास प्राप्त करता है। इसकी त्वचा खुरदरी बनावट वाली एवं भूरे लाल रंग की होती है। कुछ रूपों में यह कभी–कभी गहरे बैंगनी होती है। युवावस्था में इस कैक्टस की रिब्स के किनारे पर पीली धारियों, चमकदार, गीली त्वचा एवं पीले रंग की रीढ़ वाले सफेद ऊनी (रोमयुक्त) एरोल्स द्वारा पहचाना जाता है। इसके युवा पौधों में गर्मी में पपड़ीदार फूलों की कलियां आती हैं जो बाद में पतली नीली–हरी ट्यूबों वाले हल्के गुलाबी फलों में विकसित हो जाती है। इसका फल फूला हुआ तथा बीज भूरे रंग के होते हैं। यह धीरे–धीरे बढ़ते हैं। इस प्रजाति की विभिन्न किस्मों और रूपों को व्यापक रूप से वितरित किया जाता है जैसे "जिम्नोकैलिसियम मिहानोविची–ग्रीन चाको में, घास एवं जमीन के ताड़ के पेड़ों के बीच विरल जंगलों में उगते हैं।

"जिम्नोकैलिसियम मिहानोविची" एवं "जिम्नौकैलिसियम फाइड्रिची" इस जीनस की सबसे प्रसिद्ध एवं आम प्रजातियां हैं। ये उपोष्णकटिबंधीय से उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों की गर्म और शुष्क जलवायु के साथ समय–समय पर होने वाली वर्षा को सहन करते हैं। ये अक्सर ह्यूमस से भरपूर जंगलों की मिट्टी में अच्छा प्रदर्शन करते हैं। ये ग्रीनहाऊस में गर्मी एवं पानी के उपयोग से अच्छी तरह पनपते हैं। सर्दियों में बिना पानी के 10 डिग्री से.ग्रे. तापक्रम पर उगते हैं। खिड़की पर ऊगाई जाने वाली कैक्टस हमेशा ग्राफ्ट की जाती है जिसमें प्रचुर विकास एवं पुष्प मिलते हैं। बसंत से शरद ऋतु तक इनमें कलियां, फूल एवं फल रहते हैं।

जिम्नोकैलिसियम मल्टीपलोरम (हुक.) ब्र.एट. आरः

जिम्नोकैलिसियम सम्पूर्ण दक्षिण अमेरिका में मिलती है परन्तु एडीज की तलहटी में बड़ी संख्या में प्रजातियां पाई जाती हैं। अर्जेन्टीना के पहाड़ी प्रदेशों कार्डोबा में यह मुख्यत: मिलती है। यही पर माइक्रोसेमिनाई समूह की जिम्नोकैलिसियम

मल्टीपलोरा प्रजातियों का निवास स्थान भी है। इसका वर्णन 100 वर्ष पहले किया गया था।

इसकी बनावट 9 से.मी. ऊँचा, 12 से.मी. चौड़ी होती है तथा अक्सर तनों के समूह बनाते हैं। यह हल्का हरा गोलाकार, 10 से 15 मजबूत रिब्स तथा रेडियल वाले एरोल्स के साथ मिलता है। इसके सफेद से गुलाबी रंग के 4 से.मी. तक प्यारे पुष्प छोटी ट्यूब वाले होते हैं। अण्डाशय बड़ा एवं लम्बाई में विभाजित होता है तथा इसमें काले बीज होते हैं। पूर्व में शुमान्स के समय में दो अन्य सुन्दर किस्में ज्ञात थी अर्थात "जिम्नोकैलिसियम मल्टीफ्लोरम वैरायटी एल्बिस्पिनम एवं पेरिसिएन्स"। इनमें प्रथम एल्बिस्पिनम, दूसरी वैरायटी से अपनी नीली हरी त्वचा एवं मोटे लभगभ 3 से.मी. लम्बे सफेद स्पाइन के कारण भिन्न होता है। इसमें एरोल की संख्या स्पाइन 70 होती है तथा यह बेलनाकार आकृति का होता है। दूसरी किस्म पेरिसिएन्स में आधार पर लाल रंग से रंगे हुए अधिक संख्या में, सफेद और आपस में जुड़े हुए विभिन्न प्रकार के घुमावदार कांटे युक्त होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिम्नोकैलिसियम मल्टीपलोरम के अनेक रूप हैं जो पुराने आयातित नमूनों की परिवर्तनशीलता से प्रमाणित होता है यद्यपि उनके निवास स्थान में भूमि की बढ़ती खेती एवं सभ्यता के प्रसार के कारण संख्या सीमित हो गई है।

जिम्नोकैलिसियम क्रेहलियानम (हे.जूर) बर्ग:– इसकी बनावट प्रारम्भ में चपटा, गोलाकार लभगभ 7 से.मी. चौड़ा एवं 3.5 से.मी. ऊँचा होता है जो बाद में 15 से.मी. की ऊँचाई तथा बेलनाकार आकार में बदल जाता है। इसकी त्वचा भूरी–हरी, रिब्स भूरे–हरे रंग की होती है। रेडियल कांटे 5 संख्या में 5 मि.मी तक लम्बे आधार पर भूरे से भूरे–लाल रंग के होते हैं। शीर्ष पर 6–7 से.मी. लम्बे पुष्प निकलते हैं। बीज छोटा भूरा एवं नाव के आकार का होता है।

पर्यावासः अर्जेन्टीना–कार्डोवा क्षेत्र।

"जिम्नोकैलिसियम क्रेहलियानम" छिद्रपूर्ण हल्की अम्लीय मिट्टी में अच्छी वृद्धि करता है। अधिक पानी देने पर मिट्टी क्षारीय होने से इसकी जड़ें प्रभावित होती है। इसकी खेती ईट या पत्थर मे हाइड्रोपॉनिक द्वारा आवश्यक पोषक तत्वों को पानी में डालकर देने से की जाती है। यह अत्यधिक शुष्क वातावरण एवं अत्यधिक धूप एवं गर्मी सहन नहीं करते वरन् छाया वाले क्षेत्रों में अच्छे होते हैं। अर्जेन्टीना के कॉर्डोबा पहाड़ों मे पीले रंग की विभिन्न प्रकार के कांटों के रंग वाली स्थानीय किस्में पाई जाती हैं। पीले रंग के कांटे वैरायटी फ्लेबीस्पाइना में एवं सफेद रंग के वैरायटी एल्बीस्पाईनम में मिलते हैं। इसी प्रकार वैरायटी जैन्थनीरिएनम में गुलाबी रंग के पुष्प होते हैं जबकि रिब्स की आकृति वैरायटी रोल्फिएनम में अलग होती है। जिम्नोकैलिसियम उदाहरण जी. पारवुलम, जी. रेगोनेसी एवं जी. एस्टिरियम वैरायटी मिनिमम सभी एक समूह में आते हैं। इन सभी को मुख्यतः बीजों द्वारा उगाया जाता है।

इसी प्रकार कैक्टस की अनेक प्रजातियां न केवल सजावट हेतु वरन् उनके उपयोगों के आधार पर उगाई जाती हैं। कैक्टस में प्राप्त होने वाले रसायनों एवं गुणों पर लगातार शोध चल रहा है तथा इसके भविष्य में अन्य उपयोग प्राप्त हो सकते हैं। अतः कैक्टस को कॉटों के रूप में नहीं वरन बहुपयोगी पौधे के आधार पर जानने की जरुरत है।

सारणी–1 कैक्टस की विभिन्न प्रजातियाँ और उनके उपयोग

कार्नेगी गिगेंटीन (सगुआरो)	फलों के गूदे को जेली और वाइन में संशोधित किया जाता है। यह पापागो इंडियन के आहार का हिस्सा है। बीजों को पीसकर भी खाया जाता है।
इचिनोकैक्टस एसपी (ब्रेल कैक्टि)	इस जीनस की रीढ़ को फोनोग्राफ सुईयों और फिशहुक में प्रयुक्त किया जाता है।
इचिनोसेरियस एनीकेंथस (स्ट्रॉबेरी हेजहोग)	इसके खाने योग्य फलों का स्वाद स्ट्रॉबेरी के समान होता है।
इचिनोसरियस स्ट्रैमाइनस (भूसे के रंग का हेजहोग)	इसके खाने योग्य फलों का स्वाद स्ट्रॉबेरी के समान होता है।
इचिनोप्सिस चिलोएंसिस (किस्का)	चिली कैक्टस का उपयोग रेनस्टॉक के निर्माण में किया जाता है।
एपिथेलया ब्रोकेई (बटन कैक्टस)	इसके फल मवेशियों को खिलाए जाते हैं।
एस्कोन्ट्रिया चियोटिला (जियोटिना)	यह प्रजाति खाने योग्य फल पैदा करती है जिसे जियोटिला के नाम से जाना जाता है।
फेरोकैक्टस हैमाटाकैंथस (टेक्सास बैरल कैक्टस)	इसके रसदार, भूरे फल का उपयोग नींबू के रूप में किया जाता है।
फेरोकैक्टस विस्लिजनी (कैंडी बैरल)	जानवर इसके फल खाते हैं। कैक्टस कैंडी बनाने के लिए तने और फलों का उपयोग किया जाता है।
हिलोसेरियस अंडतम (पिटाया ड्रेगन फल, स्ट्रॉबेरी नाषपती)	हरे शल्कों वाला चमकीला लाल या गुलाबी फल आकर्षक और खाने योग्य दोनों होता है।
लोफोसेरियस षोटी (सेनिटा)	स्टेम को कैंसर और मधुमेह से लड़ने के लिए दवाओं में संशोधित किया गया।
लोफोफोरा विलियम्सि (पियोट; मेस्कन, बटन्स)	पौधे में मेस्केलिन होता है जो एक मतिभ्रम औशधि है जो दृष्टि उत्पन्न करने में सक्षम है।
मायर्टिललोकैक्टस जियोमेट्रिजन्स (ब्लू मर्टल, व्होर्टलबेरी कैक्टस)	ब्लूबेरी जैसा दिखने वाला नीला फल खाने योग्य होता है।
नोषेलिया कोचीनिलिफेरा (नोपल कैक्टस)	पौधे का उपयोग मादा कोचिनियल कीट (केक्टाइलोपियस कोकस) के लिए मेजबान के रूप में किया जाता है। कोचिनियल, एक लाल रंग की डाई इस कीट के शरीर से संशोधित की जाती है।
ऑपन्शिया एकैंथोकार्पा (बकहॉर्न चोला)	उबले हुए फूलों की कलियों का उपयोग किया जाता है।
ओपन्शिया फिकस इंडिका (भारतीय अंजीर)	इस कैक्टस का खाने योग्य फल जिसे आमतौर पर ट्यूना के रूप में जाना जाता है। इसका स्वाद तरबूज के समान मीठा होता है।
ओपन्शिया स्पिनोसियोर (केनचोला)	फर्नीचर बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले मृत पौधों का स्केल्टन के रूप में उपयोग।

पचीसेरियस पेक्टेन एबोरिजिनम (हेयरब्रश कैक्टस)	भारत में इस कैक्टस के बेर जैसे फल को हैयर ब्रश के रूप मे इस्तेमाल किया जाता है।
पेनियोसेरियस गेग्री (रात की रानी)	भारतीयों द्वारा खाया जाने वाला खाद्य फल और जड़। कथित तौर पर पोल्टिस का उपयोग श्वसन संबंधी बीमारियों के लिए किया जाता है।
पेरेस्किया एक्यूलेट (बारबाकोस करौंदा)	जेली और प्रिजर्व में इस्तेमाल किया जाने वाला बीटा, पीला फल रसदार तथा थोड़ा अम्लीय होता है।
श्लम्बरगेरा ट्रूंकेटस (क्रिसमस कैक्टस)	यह सबसे अधिक व्यावसायिक रूप से उगाया जाने वाला कैक्टस है।
सेलेनिकेरियस ग्रेंकिफ्लोरम (रात में खिलने वाला सेरेस)	इसके तने और फूल को मूत्र पथ के संक्रमण और एनजाइना के लिए हौम्योपैथिक दवा मे संशोधित किया जाता है इसका ह्रदय पर डिजिटल जैसा प्रभाव पड़ता है।
स्टेनोसेरियस गम्मोसस (पिथाया एग्रिया)	इस कैक्टस के तने को मूल निवासियों द्वारा कुचल दिया गया और पानी में फेंक दिया गया। कैक्टस में मौजूद पदार्थ मछली को जहर देने और मछली को बेहोश करने के काम आते हैं।
स्टेनोसेरियस थर्बेरी (ऑर्गन पाइप कैक्टस)	फल खाने योग्य होते हैं।
ट्राइकोसेरियस पचनोई (सैन पेड्रो कैक्टस)	पौधे में मेस्केलिन होता है जो एक ऐसी औशधि है जो दृष्टि उत्पन्न करने में सक्षम है।

सारणी–1 ओपन्षिया फलों की संरचना

पैरामीटर	ताजे फल द्रव्यमान की सामग्री
गूदा (प्रतिशत में)	43–57
बीज (प्रतिशत में)	2–10
छीलें	33–55
नमी (प्रतिशत में)	84–90
टी.एस.एस. (ब्रिक्स)	12–17
पी.एच.	5.3–7.1
प्रोटीन (प्रतिशत में)	0.2–1.6
वसा (प्रतिशत में)	0.09–0.7
फाइबर (प्रतिशत में)	0.02–3.1
राख (प्रतिशत में)	0.3–1
कुल शर्करा (प्रतिशत में)	10–17
पेक्टीन (प्रतिशत में)	0.19
विटामिन–सी (मिलीग्राम / 100 ग्राम में)	1–41

बी—कैरोटीन	अंशों में
कैलोरीमान (किलो कैलोरी/100 ग्राम मे)	47.30
कैल्शियन (मिलीग्राम/100 ग्राम में)	12.8—59
मैग्नीशियम (मिलीग्राम/100 ग्राम में)	16.1—98.4
सोडियम (मिलीग्राम/100 ग्राम में)	0.6—1.1
पौटेशियम (मिलीग्राम/100 ग्राम में)	90—217
फॉस्फोरस (मिलीग्राम/100 ग्राम में)	15—32.8
आयरन (मिलीग्राम/100 ग्राम में)	0.4—1.8

*****

खिरनी (मेनिनकारा हैक्सैन्ड्रा)–अल्प उपयोगी फल पादप

डॉ. नवीन कुमार बौहरा
मिल्कमेन कोलोनी,
पॉल रोड जोधपुर (राज.)

खिरनी का वानस्पतिक नाम मेनिनकारा हैक्सैन्ड्रा है तथा यह सेपोटेसी प्रजाति का सदस्य है। इसे सामान्यतः स्थानीय भाषा में खिरनी, रयान, रैना आदि नामों से जाना जाता है।

उत्पत्ति एवं वितरण – मेनिनकारा हैक्सैन्ड्रा मूलतः भारतीय पादप है, जो दक्षिण भारत, उत्तर मध्य भारत, गुजरात एवं राजस्थान के जंगली वन क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत में इस प्रजाति की खेती आमतौर पर मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान और महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के कुछ हिस्सों में गाँवों में, घरों के पिछले हिस्सों में, घर के बगीचों के पास की जाती है। यह प्राकृतिक रूप से जगली पौधों के रूप में भी मिलती है।

सामान्य विवरण– यह मध्यम से बड़े आकार का वृक्ष है जिसकी ऊँचाई 5 से 60 फीट तक हो सकती है। इसका तना सीधा, सदा हरित तथा लगातार फैलने वाला होता है जिसमें छायादार शीर्ष क्राऊन होता है। इसकी पत्तिया मुड़ी हुई चमकीली जिसमें ब्लेड 2–4 इंच लम्बी, आयाताकार कुंद तथा 1 इंच तक लम्बे पर्णवृन्त वाली होती हैं। इसके पुष्प सफेद 3–6 पुष्पों के अक्षीय गुच्छों में होते हैं। यह एक या एक से अधिक बीजों के साथ अंडाकार मीठे खाने योग्य बेरी फल देता है।

यह शुष्क और अर्द्धशुष्क परिस्थितियों के अनुकूल है तथा सूखे की स्थिति भी सहन कर सकता है। इसमें पुष्प अक्टूबर से नवम्बर में आते हैं तथा अप्रैल–मई में फल लगते हैं। यह अत्यधिक विषमयुग्मजी है और इस तरह के अंकुर

विविधताओं की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदर्शित करते हैं जो बेहतर वांछनीय जीनोटाइप के चयन में सहायक होते हैं। भारत में पेड़ के आकार, आकृति एवं केनोपी (शीर्ष) की विशाल आनुवांशिक परिवर्तनशीलता मौजूद है। इसका आमतौर पर चीकू के लिए व्यावसायिक रूटस्टॉक के रूप में उपयोग किया जाता है।

प्रवर्धन– इसे आमतौर पर बीजों द्वारा उगाया जाता है। हॉल ही में सॉफ्टवुड ग्राफ्टिंग का उपयोग करते हुए वानस्पतिक विधियों का प्रयास करते हुए 75 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की गई है। किसानों को गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री की आपूर्ति करने के लिए गुजरात में कुछ निजी नर्सरियों द्वारा पेड़ों के वानस्पतिक प्रसार हेतु 'बेड ग्राफ्टिंग' का प्रयास भी किया जा रहा है सी. एच. ई. एस. गोधरा एवं सी. आई. एस. लखनऊ में कुछ इलीट चयनित क्लोनों के गुणन के लिए उपयुक्त वानस्पतिक प्रसार विधियों को विकसित करने पर कार्य चल रहा है।

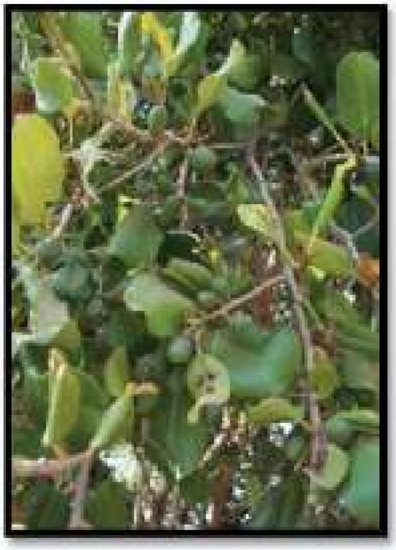

कल्टीवर्स / चयन– लम्बे समय तक क्रॉस पालीनेशन और बीज प्रसार की प्रबलता के कारण यह बागवानी गुणों वाले विशिष्ट पेड़ों का पता लगाने का अपार अवसर देता है। इस तथ्य के बावजूद कि खिरनी, प्रतिकूल परिस्थितियों, जलवायु का सामना कर सकती है, विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है तथा अर्ध शुष्क क्षेत्रों में हो सकती है फिर भी इसकी संतति में सुधार हेतु विशेष प्रयास नहीं किए गए हैं।

महत्वपूर्ण उपयोग– इस वृक्ष की प्रजाति के फल एवं छाल का आर्थिक महत्व है क्योंकि परिपक्व ताजे फल बहुत मीठे होते हैं एवं कच्चे एवं सूखे फल भी खाए जाते हैं। छाल का उपयोग कई औषधीय प्रयोजनों के लिए किया जाता है। इसके बीजों में लगभग 25 प्रतिशत तेल होता है जिसका उपयोग खाना पकाने के लिए किया जाता है। इसके फल में आईरन (लोहा), शर्करा, खनिज, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट आदि के अच्छे स्रोत हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में चीकू के वानस्पतिक प्रवर्धन हेतु व्यावसायिक रूप से रूटस्टॉक के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में छोटे एवं भूमिहीन किसानों की सामाजिक–अर्थव्यवस्था और आजीविका सुरक्षा में खिरनी वृक्ष बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन गाँवों में आदिवासी इसके फूलों को प्राकृतिक जंगली वृक्षों से इकट्ठा कर

आसपास के बाजार में 30–40 रुपये प्रति किलोग्राम के भाव से बेचते हैं। एक आदिवासी परिवार को औसतन 500–2000 रुपये इसके एक वृक्ष से प्राप्त हो सकते हैं जो इन आदिवासी परिवारों के लिए एक बड़ी सहायता देता है। इसके ताजे फल सम्पूर्ण परिवार द्वारा खाये जाते हैं जिससे पूरे परिवार को अच्छी खुराक मिलती है, विशेषकर बच्चों को विटामिन 'ए' की आवश्यकता इससे पूर्ण होती है। ये फल विटामिन 'ए' (675 आई यू) से भरपूर होने के कारण उनके लिए विटामिन 'ए' के कैपस्यूल के रूप में काम करते हैं।

आनुवांशिक संसाधन प्रबंधन– खिरनी के वृक्ष विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न आकार के पाए जाते हैं। मध्य प्रदेश के रतलाम जिले, गुजरात के पंचमहल, दाहोद एवं साबरकांठा जिले में वृक्षों के आकार, फलने के व्यवहार, फलने के समय, फलों के आकार, स्वाद आदि में परिवर्तनशीलता पाई जाती है।

मध्य प्रदेश के नीमच जिला (रामपुरा क्षेत्र) एवं धार जिला (मांडू क्षेत्र) एवं राजस्थान के सिरोही जिले में भी इस प्रकार की विभिन्नता पाई गई है।

संरक्षण– गुजरात के पंचमहल जिले से एकत्र किए गए कुछ अभिजात्य परिग्रहण (Elite accession) को गोधरा में सी.एच.ई.एस. केंद्र में स्थापित किया गया है। इसके अलावा, कुछ संग्रह आई. एस. एच. लखनऊ में भी रखे गए हैं। जहाँ तक जीन बैंक का सम्बन्ध है, एन.बी.पी.जी.आर (NBPGR) में एकत्रित विविधता को क्रायोजन बैंक द्वारा संरक्षित किया गया है।

मेनिनकारा हैक्सैन्ड्रा उष्णकटिबंधीय पश्चिमी एवं मध्य भारत के वनों की आदिवासी बहुल क्षेत्रों में एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण फल एवं नट प्रजाति है। खिरनी के आकारिकी गुणों और उच्च सामाजिक आर्थिक क्षमता में भिन्नता पाई गई है। इसकी छाल ताजे फल और निकाले गए बीज, उच्च पोषण क्षमता वाले तथा औषधीय महत्त्व के होते हैं। यह वृक्ष स्थानीय निवासियों को पर्याप्त आजीविका सहायता प्रदान करते हैं। प्राकृतिक आबादी से ताजे फल स्थानीय बाजारों में अच्छी कीमत पर बिकते हैं।

संरक्षण की आवश्यकता– आजीविका सहायता प्रजाति के अलावा खिरनी के वृक्ष सूक्ष्म पोषक तत्वों और विटामिन 'ए' की आवश्यकता पूरी करके इस क्षेत्र की महिलाओं और बच्चों की पोषण सुरक्षा में भी योगदान देते हैं। ताजे फलों एवं बीजों की उच्च मांग एवं असंगठित खेती के दबाव के चलते विगत कुछ दशकों में इसकी प्राकृतिक जंगली आबादी गंभीर रूप से बढ़ रही है जो इस प्रजाति की आनुवांशिक रूप में परिवर्तनशीलता के लिए बड़ा खतरा बन रही है। इसकी प्राकृतिक संख्या के आकार एवं उच्च विविधता के आधार पर पश्चिमी एवं मध्य भारतीय राज्यों में छः स्थानों पर इसके संरक्षण हेतु सुझाव दिया गया है। आज की आवश्यकता है कि इस प्रजाति के संरक्षण एवं संवर्धन के साथ इसकी आनुवांशिक विभिन्नता को बचाए रखने हेतु बड़े स्तर पर प्रयास किया जाना चाहिए।

****

स्पीति घाटी में सौर तापित आवासः पर्यावरण अनुकूलता और ऊर्जा दक्षता की दिशा में एक कदम

अभिलाष ठाकुर, राकेश कुमार सिंह, केसर चन्द
गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र मौहल, कुल्लू,

भूमिका

स्पीति हिमाचल प्रदेश में स्थित एक अधिक ऊंचाई वाला ठंडा रेगिस्तानी क्षेत्र है और इसकी समुद्र तल से औसतन ऊंचाई 3,808 मीटर है। यहाँ सालाना औसतन 12–40 मि.मी. वर्षा और सर्दी के महीनों में 2 मीटर तक बर्फबारी हो जाती है। स्पीति में तापमान साल भर 26°C से –22°C के बीच रहता है। परंतु स्पीति में साल के 300 या उससे अधिक दिन सूरज निकलता है और औसतन 8–12 घंटे धूप रहती है। नासा और राष्ट्रीय नवीकरणीय ऊर्जा प्रयोगशाला (एनआरईएल) के आंकड़ों के अनुसार, स्पीति में औसत सौर विकिरण 5.80 (kWh/m2/day) है, जो कि इस क्षेत्र में सौर ऊर्जा की क्षमता को दर्शाता है। अतः स्पीति जैसे क्षेत्रों में निष्क्रिय सौर तापित आवास को अपनाया जा सकता है, और इस क्षेत्र में निष्क्रिय सौर तापित आवास को अपनाना एक सशक्त और पर्यावरण के प्रति संवेदनशील उत्तरदायित्व का प्रतीक हो सकता है, क्योंकि स्पीति में लोग मुख्य रूप से खाना पकाने, पानी गर्म करने और घरों को और सरकारी भवनों को सर्दियों में गर्म और आरामदायक बनाने के लिए लकड़ी, बिजली तथा ईंधन पर आधारित तापक प्रणालियों का उपयोग करते हैं, परंतु ऐसी तापक प्रणालियों की वार्षिक चलन लागत काफी अधिक होती है। यदि इस क्षेत्र में नए भवनों की निष्क्रिय सौर प्रणाली के तहत रचना की जाए, तो ताप पर लगने वाली लागत को 10–30% तक कम किया जा सकता है, क्योंकि ये भवन बिना किसी बाहरी यंत्र के सिर्फ प्राकृतिक रूप से सूर्य के प्रकाश और ऊष्मा का उपयोग करके इमारतों में तापीय आरामदायक वातावरण बनाए रखती है, जिससे ऊर्जा दक्षता में सुधार होता है और पर्यावरण पर बोझ भी कम पड़ता है। इस प्रकार, निष्क्रिय सौर तापित आवास न केवल ऊर्जा की संवेदनशील उपयोगिता को बढ़ाता है, बल्कि सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण के मामले में भी एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।

उद्देश्य

इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य स्पीति घाटी में निष्क्रिय सौर तापित आवास की व्यापकता और प्रभावशीलता का व्यापक विश्लेषण करना है। प्रश्नावली सर्वेक्षण, जलवायु आंकड़ों के प्रलेखन और लागत विश्लेषण के माध्यम से, इस शोध का उद्देश्य चुनौतीपूर्ण वातावरण में तापीय आराम और स्थिरता प्राप्त करने में पारंपरिक आवास तकनीकों के महत्व को स्पष्ट करना है और यहाँ के पारंपरिक घरों के वास्तुशिल्प, निर्माण सामग्री तथा लागत–दक्षता को समझकर यह विश्लेषण

करना है कि कैसे घरों को सर्दियों और शुष्क जलवायु के लिए अनुकूलित किया जा सकता है। अंत में यह अध्ययन इस बात का मूल्यांकन करेगा कि आधुनिक वास्तुकला में टिकाऊ और जलवायु अनुकूल भवन बनाने के लिए पारंपरिक ज्ञान और निष्क्रिय सौर ताप जैसी तकनीकों का उपयोग कैसे किया जा सकता है।

कार्यप्रणाली

इस व्यापक अध्ययन मे स्पीति घाटी के 23 गांवों की जांच की गई, जिनमें से प्रत्येक गाँव से लगभग 30% घरों का सर्वेक्षण किया गया और उनकी निर्माण सामग्री, अभिविन्यास, ऊर्जा स्रोतों और निष्क्रिय सौर तापित प्रणाली की धारणाओं का विश्लेषण किया। घरों को सावधानीपूर्वक मापा गया और दीवारों की सामग्री, आकार, दिशा, खिड़कियों और आसपास के वातावरण का विस्तृत दस्तावेजीकरण भी किया गया। इसके अलावा, स्थापित ढांचे पर आधारित एक प्रश्नावली सर्वेक्षण भी किया गया, साथ ही स्थानीय लोगों के साक्षात्कारों से और जानकारी जुटाई गई। जलवायु के आँकड़े नासा और एनआरईएल से पर्यावरणीय संदर्भ को समझने के लिए समवर्ती रूप से जुटाए गए। सांख्यिकीय सॉफ्टवेयर जैसे एसपीएसएस और एक्सेल का उपयोग सर्वेक्षण प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण और सार्थक निष्कर्ष निकालने के लिए किया गया। इसके अतिरिक्त, स्थानीय सर्वेक्षण में सरकारी विभागों और ठेकेदारों के साथ परामर्श के माध्यम से भवनों की आर्थिक व्यवहार्यता और स्थिरता का आकलन भी किया गया। इस बहुआयामी दृष्टिकोण के माध्यम से स्पीति घाटी मे सौर तापित भवनों की प्रभावशीलता की व्यापक समझ हासिल की गई।

स्पीति में निष्क्रिय सौर तापित आवास

स्पीति में निष्क्रिय सौर तापित भवन/ परिणाम

अगर हम स्पीति के पारंपरिक घरों की उल्लेखनीय विशेषताओं की बात करें, तो यह अपने अद्वितीय वास्तुशिल्प परिदृश्य के साथ एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत समेटे हुए हैं। उनमें से एक निष्क्रिय सौर तापन का उपयोग करने में उनकी निपुणता भी है, जिसे हम स्पीति घाटी में मौजूद भवनों (चित्र 01) मे देख सकते हैं। स्पीति घाटी के अध्ययन में पाया गया कि 88.6% इमारतें पारंपरिक सामग्रियों (रैमड–अर्थ और मिट्टी–पत्थर) से बनी हैं, यहाँ सामग्रियों का चुनाव उनके बेहतर तापीय गुणों को ध्यान में रखकर किया गया है। साथ में ही 89.36% इमारतें दक्षिण की ओर उन्मुख हैं और दो मंजिला (93.45%) हैं, ताकि सूर्य से अधिकतम ऊष्मा प्राप्त हो और उसका वितरण भी सही ढंग से हो सके। 57.17% घरों में दोहरी ग्लेजिंग खिड़कियां हैं, जो

गर्मी को अंदर तो आने देती हैं, लेकिन बाहर जाने से रोकती हैं। साथ ही कमरों की ऊंचाई 7–8 फीट (60.31%) रखने से ऊर्जा वितरण में मदद मिलती है। 10,00,000 से 15,00,000 लाख रूपए की निर्माण लागत के बावजूद, 98.29% लोगों ने निष्क्रिय सौर तापित आवास को अपनाया। अध्ययन में यह भी पाया गया कि 57.83% लोगों को इस ज्ञान का पता अपने पूर्वजों से चला। कुल मिलाकर, 97.91% लोगों ने माना कि निष्क्रिय सौर तापित आवासों में उन्हें काफी आराम मिलता है। हालांकि भारी वर्षा और भूकंप से सुरक्षा में कमी है, फिर भी 80: से अधिक लोग इन घरों से संतुष्ट थे, जो कठोर जलवायु परिस्थितियों में बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की निष्क्रिय सौर तापित की क्षमता को रेखांकित करता है।

निष्कर्ष

यह अध्ययन स्पीति घाटी में निष्क्रिय सौर तापित आवासों की विरासत और सतत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करता है। स्वदेशी ज्ञान, स्थानीय सामग्री और निष्क्रिय सौर प्रणाली सिद्धांतों का उपयोग करते हुए ये पारंपरिक घर कठोर जलवायु में रहने वाले लोगों के लिए एक स्थायी और पर्यावरण के अनुकूल समाधान प्रदान करते हैं। यह अध्ययन निष्क्रिय सौर आवास को ऊर्जा दक्षता और पर्यावरणीय स्थिरता में बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में स्थापित करता है। इसी कारण हिमाचल प्रदेश सरकार ने भी निष्क्रिय सौर आवास प्रणाली को अपनाने में अग्रणी भूमिका निभाई और पूरे देश में सर्वप्रथम वर्ष 2009 में निष्क्रिय सौर आवास की नीति ही नहीं बनाई बल्कि इसको पूरे राज्य में लागू करके हिमाचल प्रदेश टाउन एंड कंट्री प्लानिंग रूल्स, 2014 में भी शामिल किया। यह पहल अन्य हिमालयी क्षेत्रों के लिए प्रेरणादायक है, जो समान नीतियों को अपनाकर निष्क्रिय सौर तापित आवासों को बढ़ावा दे सकते हैं। इन उपायों को अपनाकर भारत के हिमालयी क्षेत्रों को ऊर्जा–कुशल और पर्यावरण के अनुकूल बनाकर सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा सकती है।

*****

वायु, जल और पृथ्वीः प्रदूषण एक वैश्विक चुनौती

डिम्पल कुमारी एवं राकेश कुमार सिंह
गोविन्द बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
मौहल कुल्लू हिमाचल प्रदेश

भूमिका

हमारी पृथ्वी कभी जीवन से भरपूर एक प्राचीन नखलिस्तान थी, जो अब एक बढ़ते खतरे का सामना कर रही हैः प्रदूषण। यह घातक खतरा कई रूपों में हमारी हवा, पानी और पोषक मिट्टी में व्याप्त है। प्रदूषण भौगोलिक सीमाओं को पार कर हमारी नदियों को प्रदूषित करने वाले औद्योगिक कचरे से लेकर वायुमंडल को गर्म करने वाली ग्रीनहाउस गैसों तक वास्तव में विश्वव्यापी चिंता का विषय बन गया है।

वायु प्रदूषण सबसे बड़े खतरों में से एक है और इसे साइलेंट किलर भी कहा जाता है। दुनिया में निन्यानवे प्रतिशत लोग उन जगहों पर रहते हैं जहाँ की हवा अस्वस्थ मानी जाती है (डब्ल्यूएचओ)। अमेरिकन लंग एसोसिएशन ने अपनी वार्षिक 'स्टेट ऑफ द एयर' रिपोर्ट में कहा है कि जलवायु परिवर्तन से वायु प्रदूषण की स्थिति बिगड़ रही है। 131 मिलियन अमेरिकी अस्वास्थ्यकर हवा में सांस ले रहे हैं। विश्व वायु गुणवत्ता रिपोर्ट 2023 के अनुसार भारत 2023 में शीर्ष रैंकिंग वाले बांग्लादेश और पाकिस्तान के ठीक बाद विश्व स्तर पर तीसरा सबसे प्रदूषित देश था।

पानी, जिसे "सार्वभौमिक विलायक" के रूप में जाना जाता है, प्रदूषण के प्रति विशिष्ट रूप से संवेदनशील है। कृषि क्षेत्र न केवल वैश्विक मीठे पानी के संसाधनों का सबसे बड़ा उपभोक्ता है, जिसमें खेती और पशुधन उत्पादन पृथ्वी की सतह के पानी की आपूर्ति का लगभग 70 प्रतिशत उपयोग करते हैं बल्कि, यह एक गंभीर जल प्रदूषक भी है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार दुनिया का 80 प्रतिशत से अधिक अपशिष्ट जल उपचारित या पुनःउपयोग किए बिना पर्यावरण में वापस प्रवाहित हो जाता है। कुछ अल्प–विकसित देशों में यह आंकड़ा 95 प्रतिशत से भी ऊपर है। प्रदूषित जल स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालता है। द लैंसेट में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2015 में इसके कारण 108 मिलियन मौतें हुईं। हर साल असुरक्षित पानी लगभग 1 अरब लोगों को बीमार करता है।

ठोस अपशिष्ट

ई–अपशिष्ट

अध्ययन

अध्ययनों से पता चला है कि अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र के अपशिष्टों के माध्यम से प्रतिदिन लगभग 7 मिलियन माइक्रोप्लास्टिक वस्तुएं जलीय आवासों में छोडी जाती हैं जिस कारण माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण के वैश्विक यात्री हैं। ये वैश्विक समाचार पत्रिकाओं की चिंताजनक सुर्खियाँ हैं। प्रदूषण राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर हमारे समय की एक निर्णायक चुनौती बन गया है।

दुनिया की सबसे तेजी से बढती ठोस अपशिष्ट धारा इलेक्ट्रॉनिक कचरा या "ई–कचरा" है जो वैश्विक आबादी की तुलना में तीन गुना तेजी से बढ रहा है। वर्ष 2019 में विश्वभर में अनुमानित 536 मिलियन टन ई–कचरे में से केवल 174 प्रतिशत को एकत्र और पुनर्नवीनीकरण के रूप में सूचित किया गया था। ई–कचरा पुनर्चक्रण से लोगों का स्वास्थ्य खराब हो सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमानों के अनुसार वैश्विक स्तर पर अनौपचारिक रीसाइक्लिंग क्षेत्र में कार्यरत लाखों महिला और बाल श्रमिक ई–कचरे के संपर्क में आ सकते हैं।

वैश्विक समस्या का समाधान

जल प्रदूषण के कारण हमारा स्वास्थ्य खतरे में है। युद्ध और अन्य सभी प्रकार की हिंसाओं को मिलाकर जितने लोग मारे जाते हैं उससे अधिक लोग असुरक्षित जल के कारण प्रतिवर्ष मारे जाते हैं। चूंकि पृथ्वी पर 1 प्रतिशत से भी कम ताजा पानी वास्तव में मनुष्यों के लिए उपलब्ध है इसलिए यह जरूरी है कि हमारे पास जो कुछ भी है, उसे हम संरक्षित करें खासकर तब जब मीठे पानी की मांग वर्ष 2050 तक एक तिहाई बढने का अनुमान है। सतत विकास लक्ष्य 6 सभी के लिए पानी और स्वच्छता तक पहुंच सुनिश्चित करना जल संसाधनों के न्यायिक उपयोग के बारे में नागरिकों के बीच जागरूकता पैदा करके हासिल किया जा सकता है।

माइक्रोप्लास्टिक्स और नैनोप्लास्टिक्स संबंधी चिंताओं को दूर करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें इसके स्रोत पर प्लास्टिक कचरे को कम करना अपशिष्ट प्रबंधन प्रथाओं में सुधार करना और पर्यावरण से माइक्रोप्लास्टिक्स को हटाने के लिए अभिनव समाधान ढूंढना शामिल है। इसी तर्ज पर अगस्त, 2021 में भारत ने प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन नियम 2016 में संशोधन के माध्यम से 19 एकल–उपयोग प्लास्टिक (एसयूपी) वस्तुओं पर प्रतिबंध लगा दिया। देश में पहली बार इन चयनित वस्तुओं को "एक बार उपयोग की जाने वाली प्लास्टिक वस्तुओं" के रूप में भी परिभाषित किया गया। इसके साथ ही भारत उन 170 से अधिक देशों की सूची में शामिल हो गया है जो पहले से ही ऐसी वस्तुओं पर प्रतिबंध लगा चुके हैं।

खतरनाक ई–कचरा रीसाइक्लिंग कार्यों के खिलाफ समुदायों की सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों तरह की कार्रवाई की आवश्यकता है। ऐसी कई चीजें हैं, जो की जा सकती हैं, जैसे उच्च स्तरीय अंतरराष्ट्रीय समझौतों को लागू

करना और अपनाना, अपने देश में पर्यावरण और सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले कानून बनाना और लागू करना, ई–कचरा साइटों और उनके आसपास के समुदायों की निगरानी करना, कार्यान्वयन करना और लागू करना। ऐसे हस्तक्षेपों की निगरानी करना जो अनौपचारिक ई–कचरा रीसाइक्लिंग प्रयासों को बढ़ाते हैं, सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं और समुदाय के लिए आय के आवश्यक स्रोतों को बनाए रखते हैं। ई–कचरे से संबंधित बाल स्वास्थ्य मुद्दों के बारे में सभी स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल पेशेवरों को प्रशिक्षित करते हैं और बाल श्रम को गैर–कानूनी मानते हैं।

निष्कर्ष

कोई भी कार्य, जो प्रदूषण को कम करता है, खत्म करता है या प्रदूषण को उसके होने से पहले ही उसके स्रोत पर ही रोक देता है प्रदूषण की रोकथाम के रूप में जाना जाता है। प्रदूषण, जो स्वास्थ्य समस्याओं का मुख्य कारण है, से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, आई.पी.सी.सी. जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को स्थायी समाधान लाना चाहिए। विश्व नेताओं को इस बड़ी चुनौती का सामना करने के लिए पेरिस करार, क्योटो प्रोटोकॉल, कार्बन तटस्थ लक्ष्य, कार्बन व्यापार, हरित और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों पर स्विच करने आदि पर सहमत होना आवश्यक है।

*****

गोबर के भृंग (डंग बीट्ल्स): एक अज्ञात नायक

अपर्णा एस कलावटे

भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्रीय केंद्र पुणे, महाराष्ट्र 411044

गोबर के भृंग (स्कारब / डंग बीटल) पारिस्थितिकी तंत्र के बहुत महत्वपूर्ण घटक हैं। मैंने यहां उनका उल्लेख अज्ञात नायकों के रूप में किया है क्योंकि हम में से कई लोग उन्हें एक अवांछित भृंग के रूप में जानते हैं और पारिस्थितिकी तंत्र में निभाई गई उनकी विभिन्न भूमिकाओं से अनजान हैं। वे कई महत्वपूर्ण कार्य करते हैं जैसे कि मिट्टी को वातन प्रदान करना, डिप्टेरन मक्खियाँ, जो जानवरों पर परजीवी हैं, उन्हें प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करना, बीज फैलाना (सीड डिस्पर्सल), गोबर विघटन करना, मिट्टी की बनावट में सुधार करना। गोबर भृंग बहुत सघन मिट्टी में भी बिल खोदने में सक्षम हैं। जो केंचुओं की गतिविधि को प्रोत्साहित करता है और घास और अन्य पौधों की जड़ प्रणालियों को उन क्षेत्रों में अधिक गहराई तक प्रवेश करने में सक्षम बनाता है जहां अन्यथा प्रवेश नहीं किया जा सकता है। वे मिट्टी को हवादार भी बनाते हैं। उनके लिए जमीन में दबा हुआ गोबर माइक्रोबियल गतिविधि के लिए एक स्वस्थ वातावरण तैयार करता है, जो बदले में मिट्टी में भारी मात्रा में कार्बन जमा करता है। वे प्रत्येक दिन स्तनधारियों के लाखों टन मल को साफ कर देते हैं। उष्णकटिबंधीय देशों में गोबर भृंग का प्रभाव ग्रीन हाउस गैस कम करने में अधिक हो सकता है, जहां चरागाहों पर अधिक खाद छोड़ दी जाती है, और गोबर बीटल तेजी से गोबर को हटाते हैं, और इस प्रकार यह भविष्य के अनुसंधान के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। ये ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में मदद करते हैं।

मानव जाति के प्रति इनकी सेवा पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। गोबर के भृंग की लगभग 7000 ज्ञात प्रजातियाँ हैं और वे अंटार्कटिका को छोड़कर हर महाद्वीप पर पाई जाती हैं। भारत से लगभग 1300 प्रजातियाँ और महाराष्ट्र से 89 प्रजातियाँ रिपोर्ट की गई हैं। वे निश्चित रूप से सबसे महत्वपूर्ण और कम सराहे जाने वाले कीट समूह हैं। मिस्र की पौराणिक कथाओं के अनुसार: खेपरी प्राचीन मिस्र के धर्म में एक स्कारब–चेहरे वाले देवता हैं जो उगते या सुबह के सूरज का प्रतिनिधित्व करते हैं। खेपरी को मुख्य रूप से गोबर के भृंग की एक प्रजाति स्कारबियस सैसर (Scarabaeus sacer) के रूप में चित्रित किया गया है। मिस्र के लोग इन्हें जीवन और मृत्यु के चक्र का प्रतीक मानते हैं।

नया नारा: गोबर के भृंग किसानों के सबसे अच्छे मित्र हैं

गोबर भृंगों में एक और समूह होता है जिसे केराटिन भृंग कहा जाता है जो ट्रोगिडी परिवार से संबंधित है। इस समूह के भृंगों को कभी–कभी "छुपे हुए भृंग" (हाईड बीटल) भी कहा जाता है क्योंकि इनमें अपने शरीर को मिट्टी के नीचे ढककर छिपने की प्रवृत्ति होती है। वे नेक्रोफैगस होते हैं इसलिए उन्हें केराटिन बीटल भी कहा जाता है।

वे फोटोजेनिक नहीं होते हैं और आमतौर पर काले या भूरे रंग के होते हैं और मिट्टी में जमे होते हैं। कोई भी उन्हें पूरे शरीर पर मौजूद छोटे घने सेटे के साथ उनकी विशिष्ट मिट्टी से सजी और ऊबड़–खाबड़ उपस्थिति से पहचान सकता हैं। केराटिन भृग मृत जीवो की त्वचा को खाता है। इसलिए, इसका बहुत बड़ा फोरेंसिक महत्त्व है। मृत जीव पर उनकी उपस्थिति के कारण हम उस जीव की मृत्यु के समय का पता लगा सकते हैं। हाल ही में भारत में, लगभग 19 वर्षों के अंतराल के बाद (यानी 2005 में एक विदेशी वैज्ञानिक द्वारा कर्नाटक से ट्रोगिड बीटल की एक नई प्रजाति का वर्णन किया गया था) ट्रोगिड बीटल की एक नई प्रजाति ओमॉर्गस (ओमॉर्गस) खानदेश स्ट्रम्फर और कलावटे, 2023 का वर्णन किया गया है (प्रथम भारतीय वैज्ञानिक)।

गोबर भृंगों का एक और समूह है जिन्हें जियोट्रुपिड्स या अर्थ बोरर्स कहा जाता है। वे उड़ान के दौरान ध्वनि उत्पन्न करते हैं इसलिए उन्हें "संगीतकार भृंग" कहा जाता है और ये रोशनी की ओर आकर्षित होते हैं। इन भृग पर भारत में बहुत ही कम अध्ययन हुआ है। हाल ही में मैंने अर्थ बोरर्स की तीन नई प्रजातियों का वर्णन किया है: बोल्बोसेरस सह्याद्रीसे (Bolboceras sahyadriense) कलावटे और हिलर्ट, 2018; बोल्बोसेरस बोपडेवेन्से (Bolboceras bopdevense) कलावटे और हिलर्ट, 2022 और बोल्बोसेरस ट्रिबकेंसे कलावटे और हिलर्ट, 2022।

इन छोटे जीवों की आबादी बहुत महत्वपूर्ण है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, वे कई महत्वपूर्ण पारिस्थितिक भूमिकाएँ निभाते हैं। इनका संरक्षण करना बहुत महत्वपूर्ण है। पर्यावरण में गोबर भृंगों और अन्य कीड़ों के कार्यों के बारे में जागरूकता बढ़ाना आवश्यक है। भारत में वन विभाग के अधिकारी के प्रतिबंधित जंगल में और जंगल के आस–पास वाले इलाकों में कुछ इस तरह साइन बोर्ड लगाने चाहिए, "गोबर भृंगों या हाथी के गोबर के ऊपर से वाहन न चलाएं"।

नया नारा: गोबर को जरा संभाल कर गाड़ी चलायें या पैर रखे

गोबर भृंग गोबर के साथ

*****

भारतीय हिमालयी क्षेत्र में बावड़ियों का जल आपूर्ति में महत्व, क्षय तथा संरक्षण नीतियाँ

धर्म चन्द, राकेश कुमार सिंह, रेनू लता, खेम चन्द

गोविंद वल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,

हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र मौहल – कुल्लू

बावड़ी हिमालयी क्षेत्रों में पाई जाने वाली एक पारंपरिक जल भंडारण संरचना है, जो सिंचाई तथा पीने दोनों के लिए पानी उपलब्ध करता है। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में बावड़ियाँ वास्तुशिल्प चमत्कार के रूप में खड़ी हैं, जो क्षेत्र के समृद्ध इतिहास और सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व करती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों के लोग मुख्यतः चश्मे तथा बावड़ी के पानी पर निर्भर रहते हैं। बावड़ी जल स्रोत के अलावा जटिल नक्काशी से सुसज्जित वास्तुकला भी है। बावड़ियाँ हिमालयी क्षेत्रों में सामाजिक एकत्रीकरण तथा धार्मिक स्थानों के रूप में भी कार्य करती हैं।

मनाली में राम मंदिर अग्र स्थित बावड़ी

हिमालयी क्षेत्रों में बावड़ी का महत्व

1. **जल सुरक्षाः** बावड़ियाँ पूरे वर्ष निरंतर जल आपूर्ति करती हैं। शुष्क मौसम में भी बावड़ियाँ पीने के पानी तथा घरेलू जरूरतो के लिए पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करती हैं।

2. **पारिस्थितिक महत्त्वः** हिमालयी क्षेत्रों में पारिस्थितिक संतुलन कुछ हद तक बावड़ियों द्वारा संरक्षित है। बावड़ियों में पानी की उपलब्धता छोटे कीटों, पक्षियों, उभयचरों सहित विभिन्न जीवों को अपनी ओर आकर्षित करती है। उदाहरणतः मधुमक्खियां पानी के लिए बावड़ियों के पास आती हैं तथा आस–पास के बगीचों में परागण करती हैं, जिससे फलों की पैदावार बढ़ती है जो कि समग्र पारिस्थितिकी संतुलन में योगदान देता है।

3. **धार्मिक स्थान तथा सांस्कृतिक विरासतः** हिमालयी क्षेत्रो मे बावड़ियों का धार्मिक महत्व भी बहुत है। बावड़ियाँ कई समुदायों की संस्कृति का अभिन्न अंग है जैसे कि "हिमाचल प्रदेश" तथा "उत्तराखंड" बावडियो को देवताओं के साथ भी जोड़ा जाता है तथा बावड़ियों को पूजा जाता है। हिमाचल प्रदेश के कुछ स्थानों मे नवजात शिशु के जन्म के पश्चात मुंडन संस्कार, विवाह के दौरान "पानी नीयुद्रना" और "सुहाग पानी" तथा मकर सक्रांति के दौरान बावड़ी के पानी से नहाना जैसे कि कुल्लू जिले में "माघ महातम" में बावडी के जल का उपयोग किया जाता है।

जिला कुल्लू के भुंतर में बावड़ी की पूजा करता युवक

4. **आर्थिक महत्वः** बावड़ियाँ कृषि को बनाए रखने, पर्यटन तथा जल आपूर्ति को सुनिश्चित करके लोगों को आर्थिक रूप से लाभान्वित करती हैं।

5. **जल सरंक्षणः** बावड़ियों का कुशल डिजाइन वर्षा जल से भूजल पुनर्भरण की अनुमति देता है, यह समग्र जल सुरक्षा में योगदान देता है और पानी की कमी वाले क्षेत्रों में कृषि गतिविधियों का समर्थन करता है।

हिमालयी क्षेत्रों में बावडी के सूखने/नष्ट होने के मुख्य कारण

1. **लापरवाही के कारणः** लापरवाही और सही रखरखाव ना होने के कारण हिमालयी क्षेत्रों में कई बावड़ियाँ समय के साथ–साथ खराब

होती जा रही हैं। बावड़ियों की यह उपेक्षा उनके क्षय को तेज कर रही हैं।

जिला मंडी की बरोट घाटी में सही रखरखाव ना होने के कारण सूखी बावड़ी

2. **शहरीकरण के कारण अतिक्रमण:** हिमालयी क्षेत्रों में शहरीकरण के कारण हो रहा अतिक्रमण भी बावड़ियों के सूखने का मुख्य कारण है। जैसे–जैसे शहरों का विस्तार हो रहा है ये ऐतिहासिक संरचनाएँ अक्सर अनियोजित विकास का शिकार हो जाती हैं और इनका परित्याग और क्षय हो जाता है।

जिला मंडी के थुनाग में अनियोजित विकास के कारण बावड़ी का होता क्षय

3. **प्रदूषण:** हिमालयी क्षेत्रों में कृषि गतिविधियों जैसे अत्यधिक कीटनाशकों का छिड़काव तथा अनुचित तरीके से अपशिष्ट निपटान करने के कारण पानी की गुणवत्ता में कमी आ रही है।

4. **जलवायु परिवर्तन तथा प्राकृतिक आपदा:** हिमालयी क्षेत्रों में अनियमित वर्षा पैटर्न बावड़ियों में पानी की उपलब्धता को प्रभावित करता है। हिमालयी क्षेत्र में प्राकृतिक आपदाएँ भी बावड़ियों को नुकसान पहुँचाती हैं जैसे कि भूस्खलन, बादल का फटना। हालांकि, प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा बावड़ियों को हो रहा नुकसान संख्या में ना के बराबर है। वर्ष 2023 में अत्यधिक वर्षा के कारण शिमला की शिव बावड़ी भूस्खलन के मलवे के नीचे आ गई थी।

शिमला की शिव बावड़ी भूस्खलन से नष्ट हुई

जिला कुल्लू के जुआनी गाँव में बादल फटने के कारण मलबे के नीचे दबी बावड़ी

हिमालयी क्षेत्रों में बावड़ी के संरक्षण के लिए रणनीतियाँ

1. **प्रलेखनः** हिमालयी क्षेत्रों में बावड़ी के संरक्षण के लिए सबसे महत्वपूर्ण है कि बावड़ियों का दस्तावेजीकरण हो तथा मासिक तौर पर या हर तीन माह में बावड़ियों की प्रवाह दर तथा तापमान को भी मापा जाना चाहिए क्योंकि जो मापा जा सकता है उसका प्रबंधन किया जा सकता है।

बावड़ी के जल तापमान को मापते हुए

2. **सामुदायिक जागरूकता तथा भागीदारीः** किसी भी चीज के संरक्षण के लिए लोगों की भागीदारी होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि लोगों की बावडी के प्रति जागरूकता ही बावड़ियों के संरक्षण में भूमिका निभा सकती है। हिमालयी क्षेत्रों में बावड़ियों का सही रूप से रखरखाव स्थानीय लोगों की भागीदारी के बिना मुश्किल है।

3. **प्रशिक्षणः** स्थानीय लोगों को सरकार द्वारा वैज्ञानिक संस्थानों के माध्यम से बावड़ियों के प्रवाह दर को मापने तथा सही तरीके से रखरखाव की विधियों से अवगत करवाना चाहिए।

4. **जल गुणवत्ता मूल्यांकनः** बावड़ी का पानी उपयोग के लिए सुरक्षित है इसके लिए पानी की गुणवत्ता की जांच करना आवश्यक है। अगर बावड़ी का पानी उपयोग के लिए सुरक्षित नही है तो जल गुणवत्ता का मूल्यांकन करके संदूषण के स्रोत का पता लगाया जा सकता है कि संदूषण का स्रोत कृषि अपवाह, औद्योगिक निर्वहन या अनुचित अपशिष्ट निपटान है।

5. **सुदूर संवेदन प्रणाली तथा कार्यान्वयनः** हिमालयी क्षेत्रों में अधिकांश बावड़ियाँ, भूजल

के उदगम स्थान पर ही होती हैं। हिमालयी क्षेत्रों में ऐसी बहुत कम बावड़ियां होती हैं जहां पानी किसी दूसरे स्थान से कूल अथवा छोटी नहरों द्वारा लाकर एकत्रित किया जाता है।

भूजल पुनर्भरण हेतु रिसावी खाई

भूजल पुनर्भरण हेतु चेक डैम

सुदूर संवेदन प्रणाली द्वारा भूजल पुनर्भरण के लिए "पुनर्भरण क्षेत्रों" को चिह्नित किया जा सकता है तथा भूजल पुनर्भरण क्षेत्रों में "पुनर्भरण संरचनाएं" जैसे कि चेक डैम, रिसावी गड्ढे तथा रिसावी खाइयों का निर्माण किया जा सकता है जिससे बावड़ियों के प्रवाह दर में बढ़ोत्तरी आए।

*****

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय में राजभाषा नीति का कार्यान्वयन

मंत्रालय के राजभाषा प्रभाग का कार्य भारत के संविधान, राजभाषा अधिनियम, 1963 (यथा संशोधित 1967), राजभाषा नियम, 1976 (यथा संशोधित 1987, 2007 एवं 2011), वार्षिक कार्यक्रम और राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा समय–समय पर जारी आदेशों में विहित संघ की राजभाषा नीति का समुचित अनुपालन सुनिश्चित करना है। इसके तहत मंत्रालय में महत्वपूर्ण दस्तावेजों का अनुवाद कार्य और राजभाषा नीति का कार्यान्वयन शामिल है। वर्ष 2024 की द्वितीय छमाही के दौरान राजभाषा प्रभाग द्वारा किए गए महत्वपूर्ण कार्यों का ब्यौरा निम्नानुसार है:–

1. **राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें:** वर्ष 2024 की द्वितीय छमाही के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की दो तिमाही बैठकें आयोजित की गईं जिनमें मंत्रालय के प्रभागों/अनुभागों के साथ–साथ मंत्रालय के दिल्ली–एनसीआर स्थित अधीनस्थ कार्यालयों में राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की स्थिति की समीक्षा की गई।

2. **हिंदी कार्यशालाएं:** इस अवधि के दौरान मंत्रालय एवं इसके नियंत्रणाधीन कार्यालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए 'संसदीय राजभाषा समिति की संशोधित प्रश्नावली कैसे भरें' विषय पर 02 हिंदी कार्यशालाएं आयोजित की गईं।

3. **निरीक्षण:** 01 जुलाई, 2024 से 31 दिसंबर, 2024 तक संसदीय राजभाषा समिति ने मंत्रालय के 02 नियंत्रणाधीन/अधीनस्थ कार्यालयों का राजभाषा संबंधी निरीक्षण किया। मंत्रालय के राजभाषा प्रभाग के अधिकारियों ने भी 09 क्षेत्रीय/अधीनस्थ कार्यालयों का राजभाषायी निरीक्षण किया है। इनके अलावा राजभाषा प्रभाग के अधिकारियों ने मंत्रालय के 14 प्रभागों/अनुभागों का राजभाषा संबंधी निरीक्षण किया।

4. **पर्यावरण पत्रिका का प्रकाशन:** मंत्रालय की 'पर्यावरण पत्रिका' का 72वां अंक जुलाई, 2024 में प्रकाशित कर दिया गया है।

5. **हिंदी माह का आयोजन:** मंत्रालय में दिनांक 01.09.2024 से 30.09.2024 तक मंत्रालय, एनएईबी और सीसीयू के कार्मिकों के लिए संयुक्त रूप से हिंदी माह–2024 का आयोजन किया गया। इस दौरान कार्मिकों के लिए 07 हिंदी प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। प्रतियोगिताओं के विजेताओं और हिंदी में टिप्पण–आलेखन हेतु प्रोत्साहन योजना के विजेताओं को 27 जनवरी, 2025 को एक समारोह में संयुक्त सचिव(प्रशा./राजभाषा) द्वारा प्रशस्ति–पत्र प्रदान किए गए।

राजभाषा प्रभारी संयुक्त सचिव महोदय से पुरस्कार प्राप्त करते हुए हिंदी माह, 2024 और 'सरकारी कामकाज (टिप्पण–आलेखन) मूल रूप से हिंदी में करने के लिए प्रोत्साहन योजना 2023–24' के पुरस्कार विजेता

*****

विभिन्न कार्यालयों द्वारा आयोजित एक पेड़ माँ के नाम अभियान

इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड, नई दिल्ली-110003